महर्षि मेँहीँ-पदावली

(सन्तमत-सिद्धान्त-सहित)

अखिल भारतीय संतमत-सत्संग-प्रकाशन
महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर, बिहार (भारत)

प्रकाशक
अखिल भारतीय संतमत-सत्संग-प्रकाशन
महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर, बिहार (भारत)

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

प्रथम संस्करण : ३००० प्रतियाँ, वि०सं०, २०२१, सन् १९५४ ई०
द्वितीय संस्करण : ३००० प्रतियाँ, वि०सं०, २०२३, सन् १९५६ ई०
पन्द्रहवाँ संस्करण : ३००० प्रतियाँ, वि०सं०, २०४१, सन् १९८४ ई०
पैंतीसवाँ संस्करण : ६१०० प्रतियाँ, वि०सं०, २०५९, सन् २००२ ई०
छियालीसवाँ संस्करण : ५००० प्रतियाँ, वि०सं०, २०६९, अप्रैल, २०१२ ई०
सैंतालीसवाँ संस्करण : १०००० प्रतियाँ, वि०सं०, २०६९, जुलाई, २०१२ ई०

सहयोग राशि : पन्द्रह रुपये मात्र

मुद्रक
शान्ति-सन्देश प्रेस
महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर, बिहार (भारत)

प्रकाशकीय

सत्संगी बन्धुओं के प्रेमाग्रह से अखिल भारतीय सन्तमत-सत्संग प्रकाशन-समिति के द्वारा 'महर्षि मेँहीँ-पदावली' का नवीन संस्करण सेवा में निवेदित हो रहा है।

पदावली में अभिव्यक्त विचारों का वर्गीकरण इसमें भिन्न प्रणाली से किया गया है। परम प्रभु परमात्मा, सन्तगण और मार्गदर्शक सद्गुरु, इन तीनों को एक ही के तीन रूप समझकर इन तीनों की स्तुति-प्रार्थनाओं को प्रथम वर्ग में स्थान दिया गया है; क्योंकि सन्त गरीबदासजी ने निर्देश दिया है -

साहिब से सतगुरु भये, सतगुरु से भये साध।
ये तीनों अंग एक हैं, गति कछु अगम अगाध ॥
साहब से सतगुरु भये, सतगुरु से भये सन्त।
धर धर भेष विलास अंग, खेलैं आद अरु अन्त ॥

द्वितीय वर्ग में सन्तमत के सिद्धांतों का एकत्रीकरण है। तृतीय वर्ग में प्रभु-प्राप्ति के एक ही साधन 'ध्यान-योग' का संकलन है, जो मानस जप, मानस ध्यान, दृष्टि-साधन और नादानुसंधान या सुरत-शब्द-योग का अनुक्रमबद्ध संयोजन-सोपान है। चतुर्थ वर्ग में 'संकीर्त्तन' नाम देकर तद्भावानुकूल गेय पदों के संचयन का प्रयत्न है। पंचम वर्ग में आरती उतारी गई है अर्थात् उपस्थित की गई है।

साधकों की सुविधा का ख्याल करके नित्य प्रति की जानेवाली स्तुति-प्रार्थनाओं, संतमत-सिद्धान्त एवं परिभाषा-पाठ आदि को प्रारंभ में ही अनुक्रम-बद्ध कर दिया गया है और उसे स्तुति-प्रार्थना का अंग मानकर उसी वर्ग में स्थान दिया गया है।

गन्तव्य स्थान की दिशा एवं वहाँ तक जाने के मार्गों तथा सहायक संवलों को बिना जाने और बिना लिये ही जो यात्री चल देता है, उससे गन्तव्य स्थल तक पहुँचने की कोई आशा ही नहीं की जाती, उलटे उसके रास्ते में ही भटकने और भटककर नष्ट हो जाने की सम्भावना होती है। यही बात ऐसे साधकों के लिए भी है, जिन्होंने ईश्वर-स्वरूप, उनकी प्राप्ति की युक्ति-युक्त साधन-विधि तथा उसकी सफलता के हेतु सदाचार, सत्संग, सद्गुरु-सेवा आदि संवलों का बिना संचयन किये केवल भावुकतावश कुछ करने में अपने को लगा दिया है।

सच्चे सदाचारी साधकों को यह स्पष्ट बोध होगा कि गागर में सागर की भाँति इस पदावली में इन सब ज्ञान-दिशाओं का निदर्शन है। साथ ही वे यह भी प्रतीत कर सकेंगे कि ऐसी शक्ति-संवेग-पूरिता वाणी केवल सन्तजन ही अभिव्यक्त करने में समर्थ हो सकते हैं। इसी श्रद्धा और विश्वास से हमें उत्प्रेरणा होती है कि साधनशील मुमुक्षु इससे सहायक प्रकाश प्राप्त करेंगे और इसी आधार ने हमें छपाने का बल प्रदान किया है। आशा है, मुमुक्षु साधक इसे अपनाकर कल्याण-पथ पर अग्रसर होंगे और परम प्रभु से भी हम यही प्रार्थना करते हैं।

महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट
भागलपुर-३ (बिहार)
संवत् २०६९ वि०
गुरु-पूर्णिमा, २०१२ ई०

विनीत :
अ० भा० सन्तमत-सत्संग
प्रकाशन समिति

महर्षि-वाणी

भिन्न-भिन्न इष्टों के माननेवाले के भिन्न-भिन्न इष्टदेव कहे जाते हैं। इन सब इष्टों के भिन्न-भिन्न नाम-रूप होने पर भी सब की आत्मा अभिन्न ही है। भक्त जबतक अपने इष्ट के आत्मस्वरूप को प्राप्त न कर ले, तबतक उसकी भक्ति पूरी नहीं होती। किसी इष्टदेव के आत्मस्वरूप को प्राप्त कर लेने पर परम प्रभु सर्वेश्वर की प्राप्ति हो जाएगी, इसमें संदेह नहीं। प्रत्येक इष्ट के स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, कैवल्य और शुद्ध आत्मस्वरूप हैं। जो उपासक अपने इष्ट के आत्मस्वरूप का निर्णय नहीं जानता और उसकी प्राप्ति का यत्न नहीं करता; परन्तु उसके केवल वर्णात्मक नाम और स्थूल रूप में फँसा रहता है, उसकी मुक्ति अर्थात् उसका परम कल्याण नहीं होगा।

किसी से कोई विद्या सीखनेवाले को सिखलानेवाले से नम्रता से रहने का तथा उनकी प्रेम-सहित कुछ सेवा करने का ख्याल हृदय में स्वाभाविक ही उदित होता है, इसलिए गुरु-भक्ति स्वाभाविक है। गुरु-भक्ति के विरोध में कुछ कहना फजूल है। निःसन्देह अयोग्य गुरु की भक्ति को बुद्धिमान आप त्यागेंगे और दूसरे से भी इसका त्याग कराने की कोशिश करेंगे, यह भी स्वाभाविक ही है।

मस्तक, गर्दन और धड़ को सीधा रखकर किसी आसन से देर तक बैठने का अभ्यास करना अवश्य ही चाहिए। दृढ़ आसन से देर तक बैठे रहने के बिना ध्यानाभ्यास नहीं हो सकता है।

आँखों को बंद करके आँख के भीतर डीम को बिना उलटाये वा उस पर कुछ भी जोर लगाये बिना, ध्यानाभ्यास करना चाहिए; परन्तु नींद से अवश्य बचते रहना चाहिए। ●

शब्द–सूची

क्रमांक		पृष्ठांक
	अ	
१.	अव्यक्त अनादि अनन्त अजय	४
२.	अपनी भगतिया सतगुरु साहब	२५
३.	अधर डगर को सतगुरु भेद	४७
४.	अधः ऊर्ध्व अरु दायें बायें	५३
५.	अति पावन गुरु मन्त्र	७१
६.	अन्तर के अन्तिम तह में गुरु हैं	८१
७.	अद्भुत अन्तर की डगरिया	८७
८.	अज अद्वैत पूरन ब्रह्म पर की	९३
	आ	
९.	आहो भाई होऊ गुरु आश्रित हो	४८
१०.	आगे माई सतगुरु खोज करहु	७८
११.	आहो भक्त सार भगति करु हो	८५
१२.	आहो प्रेमी करु प्रेम प्रभु सए हो	८५
१३.	आहो ज्ञानी ज्ञान गुनी प्रभु भजु हो	८६
१४.	आरति तन मन्दिर में कीजै	९१
१५.	आरति परम पुरुष की कीजै	९२
१६.	आरति अगम अपार पुरुष की	९२
१७.	आरति संग सतगुरु के कीजै	९६
१८.	आओ वीरो मर्द बनो अब	५९
	ए+ऐ	
१९.	एकबिन्दुता दुर्बीन हो दुर्बीन क्या करे	८०
२०.	ऐन महल पट बन्द कै	५८

क्रमांक		पृष्ठांक
	क	
२१.	क्या सोवत गफलत के मारे	८२
२२.	करिये भाई सतगुरू गुरू पद	७८
	ख	
२३.	(क) खोजो पन्थी पन्थ तेरे घट	४९
२४.	(ख) खोजो पन्थी पन्थ तेरे घट	५०
२५.	खोज करो अंतर उजियारी	५४
२६.	खोजत खोजत सतगुरु भेटि गेला	७३
	ग	
२७.	गंग जमुन जुग धार मधहि	५६
२८.	गंग जमुन सरस्वती संगम पर	५६
२९.	गुरू गुरू मैं करौं पुकारा	१६
३०.	गुरुदेव दानि तारण	१७
३१.	गुरु मम सुरत को गगन पर चढ़ाना	१९
३२.	गुरु खोलिये वज्र कपाट	१९
३३.	गुरु कीजै भव-निधि पार	२०
३४.	गुरु के शरण गहु, धन धन गुरु कहु	४८
३५.	गुरु गुरु त्राहि गुरु	६८
३६.	गुरु नाम गुरु नाम गुरु नाम	६९
३७.	गुरु धन्य हैं गुरु धन्य हैं	७०
३८.	गुरु दीन दयाला नजर निहाला	७१
३९.	गुरु सतगुरु सम हित नहिं कोऊ	७५
४०.	गुरु को सुमिरो मीत क्यों अवसर	७६
४१.	गुरु हरि चरण में प्रीति हो	८८
४२.	गुरु जुगती लय घट पट टारौं	९५

क्रमांक		पृष्ठांक
	घ	
४३.	घट बिच अजब तमाशा	५२
४४.	घट बीच अजब तमाशा	५२
४५.	घट-पट तिहू के पार में	५१
४६.	घटवा घोर रे अंधारी	८१
	च	
४७.	चलु चलु चलू भाई	७६
	छ	
४८.	छन छन पल पल समय सिरावे	८४
	ज	
४९.	जय जय परम प्रचण्ड तेज तम	०३
५०.	जय जयति सद्गुरु जयति जय जय	१५
५१.	जय जय राम जय जय राम	६२
५२.	जय जय रामा जय जय राम कहु राम	६३
५३.	जनि लिपटो रे प्यारे जग परदेसवा	८२
५४.	जौं निज घट-रस चाहो	८७
५५.	जीवो! परम पिता निज चीन्हो	८८
५६.	जेठ मन को हेठ करिये	९१
५७.	जहाँ सूक्ष्म नाद ध्वनि आज्ञा	६०
५८.	जीव उद्धार का द्वार पुकार कहा	७४
	त	
५९.	तुम साहब रहमान हो रहम करो	१०
	द	
६०.	दया प्रेम सरूप सतगुरु	२१
६१.	दिन बीतत जावे, आयु खुटावे	८३

क्रमांक		पृष्ठांक
	ध	
६२.	ध्यान भजन हीन, लहिहौ न प्रभु धन	८६
६३.	ध्यानाभ्यास करो सद सदही	३०
	न	
६४.	नैनों के तारे चश्म रोशन	३०
६५.	निज तन में खोज सज्जन	५१
६६.	नोकते सफेद सन्मुख	५७
६७.	नैन सों नैनहिं देखिय जैसे	३४
६८.	नाहिंन करिये जगत सों प्रीती	८२
६९.	नित प्रति सत्संग कर ले प्यारा	८८
७०.	नमामी अमित ज्ञान रूपं कृपालं	१३
७१.	नहीं थल नहीं जल	३५
	प	
७२.	प्रभु अटल अकाम अनाम	११
७३.	प्रभु तोहि कैसे देखन पाऊँ	३४
७४.	प्रभु अकथ अनामी सब पर स्वामी	३१
७५.	प्रभु वरणन में आवैं नाहीं	३१
७६.	प्रभु अकथ अनाम अनामय	३२
७७.	पाँच नौबत बिरतन्त कहौं	४२
७८.	प्रथमहिं धारो गुरु को ध्यान	५२
७९	प्रभु मिलने जो पथ धरि जाते	८७
८०.	प्रेम-भक्ति गुरु दीजिये	०८
८१.	प्रेम-प्रीति चित चौक लगाये	९५
	ब	
८२.	बार-बार करुँ वीनती	२३
८३.	बिना गुरु की कृपा पाये	७८

क्रमांक		पृष्ठांक
	भ	
८४.	भजु मन सतगुरु सतगुरु	२७
८५.	भजो सत्तनाम, सत्तनाम	६१
८६.	भजो हो गुरु चरण कमल	६४
८७.	भाई योग हृदय वृत्त केन्द्र बिन्दु	५८
८८.	भजु मन सतगुरु दयाल	६५
८९.	भजु मन सतगुरु दयाल गुरु दयाल	६५
९०.	भजो हो मन गुरु उदार	६५
९१.	भजो भजो गुरु नाम हो	६६
९२.	भजु गुरु नामा, लहु विश्रामा	६६
९३.	भजो साध गुरु साध गुरु	६७
९४.	भजो सत्यगुरु सत्यगुरु	६८
९५.	भजो भजो गुरुदेव हो भाई	६९
	म	
९६.	मास आसिन जगत बासिन	८९
९७.	मंगल मूरति सतगुरू	०२
९८.	मोहि दे दो भगती दान	२०
९९.	मेधा मन संग जेते	३५
१००.	मन तुम बसो तीसरो नैना	६०
	य	
१०१.	योग हृदय केन्द्र बिन्दु में	५०
१०२.	यहि विधि जैबै भव पार	५७
१०३.	योग हृदय वृत्त केन्द्र बिन्दु सुख	६०
१०४.	योग हृदय में वास ना	८०
१०५.	यहि मानुष देह समैया में	८३

क्रमांक		पृष्ठांक
	र	
१०६.	राम नाम अमर नाम भजो भाई सोई	६३
	श	
१०७.	श्री सद्गुरु की सार शिक्षा	०६
	स	
१०८.	सब क्षेत्र क्षर अपरा परा पर	०१
१०९.	सब सन्तन्ह की बड़ि बलिहारी	०१
११०.	सत्यपुरुष की आरति कीजै	०९
१११.	सर्वेश्वरं सत्य शान्ति स्वरूपं	१२
११२.	सद्गुरु नमो सत्य ज्ञानं स्वरूपं	१४
११३.	सतगुरु सुख के सागर	१६
११४.	सतगुरु दाता सतगुरु दाता	२६
११५.	सतगुरु दरस देन हित आए	२७
११६.	सतगुरु जी से अरज हमारी	२८
११७.	सतगुरु साहब की बलिहारी	२९
११८.	सन्तमते की बात, कहूँ साधक हित लागी	३८
११९.	सृष्टि के पाँच हैं केन्द्रन	४३
१२०.	सुनिये सकल जगत के वासी	४३
१२१.	सुखमन झल झल बिन्दु	५३
१२२.	सुषमनियाँ में मोरी नजर लागी	५५
१२३.	सुष्मनियाँ में नजरिया थिर	५५
१२४.	सुखमन के झीना नाल से	५५
१२५.	सूरति दरस करन को जाती	५८
१२६.	साँझ भये गुरु सुमिरो भाई	५९
१२७.	सतनाम सतनाम सतनाम भज	६१

क्रमांक		पृष्ठांक
१२८.	सब भव भय भंजन	६४
१२९.	सतगुरू गुरुदेव गुरु	७२
१३०.	सत्य ज्ञान दायक गुरु पूरा	७२
१३१.	सतगुरु सत परमारथ रूपा	७२
१३२.	सन्तन मत भेद प्रचार किया	७३
१३३.	सतगुरु सतगुरु नितहिं पुकारत	७५
१३४.	सतगुरु चरण टहल नित करिये	७५
१३५.	सतगुरु सेवत गुरु को सेवत	७७
१३६.	सतगुरु पद बिनु गुरु भेटत नाहीं	७७
१३७.	सम दम और नियम यम	७९
१३८.	सुरत सम्हारो अधर चढ़ाओ	८१
१३९.	समय गया फिरता नहीं	८३
१४०.	सन्तमत-सिद्धान्त	०५
१४१.	सन्तमत की परिभाषा	०७
	ह	
१४२.	हे प्रेमरूपी सतगुरु	२३
१४३.	है जिसका नहीं रंग नहिं रूप	३२
	क्ष	
१४४.	क्षेत्र क्षर अक्षर के पार में	३८
	त्र	
१४५.	त्राहि गुरु त्राहि गुरु	६९

(१)

ईश-स्तुति

सब क्षेत्र क्षर अपरा परा पर, औरु अक्षर पार में।
निर्गुण सगुण के पार में, सत् असत् हू के पार में ॥१॥
सब नाम रूप के पार में, मन बुद्धि वच के पार में।
गो गुण विषय पँच पार में, गति भाँति के हू पार में ॥२॥
सूरत निरत के पार में, सब द्वन्द्व द्वैतन्ह पार में।
आहत अनाहत पार में, सारे प्रपञ्चन्ह पार में ॥३॥
सापेक्षता के पार में, त्रिपुटी कुटी के पार में।
सब कर्म काल के पार में, सारे जंजालन्ह पार में ॥४॥
अद्वय अनामय अमल अति, आधेयता गुण पार में।
सत्तास्वरूप अपार सर्वाधार, मैं-तू पार में ॥५॥
पुनि ओ३म् सोऽहम् पार में, अरु सच्चिदानन्द पार में।
हैं अनन्त व्यापक व्याप्य जो, पुनि व्याप्य व्यापक पार में ॥६॥
हैं हिरण्यगर्भहु खर्व जासों, जो हैं सान्तन्ह पार में।
सर्वेश हैं अखिलेश हैं, विश्वेश हैं सब पार में ॥७॥
सत्शब्द धर कर चल मिलन, आवरण सारे पार में।
सद्गुरु करुण कर तर ठहर धर, मेँहीँ जावे पार में ॥८॥

(२)

प्रातःसायंकालीन सन्त-स्तुति

सब सन्तन्ह की बड़ि बलिहारी।
उनकी स्तुति केहि विधि कीजै,
मोरी मति अति नीच अनाड़ी ॥ सब०॥१॥

दुःख-भंजन भव-फंदन-गंजन,
ज्ञान-ध्यान-निधि जग-उपकारी।
विन्दु-ध्यान-विधि नाद-ध्यान-विधि,
सरल-सरल जग में परचारी ॥ सब०॥२॥
धनि ऋषि-सन्तन्ह धन्य बुद्ध जी,
शंकर रामानन्द धन्य अघारी।
धन्य हैं साहब सन्त कबीर जी,
धनि नानक गुरु महिमा भारी ॥ सब०॥३॥
गोस्वामी श्री तुलसि दास जी,
तुलसी साहब अति उपकारी।
दादू सुन्दर सूर श्वपच रवि,
जगजीवन पलटू भयहारी ॥ सब०॥४॥
सतगुरु देवी अरु जे भये, हैं,
होंगे सब चरणन शिर धारी।
भजत है 'मेँहीँ' धन्य-धन्य कहि,
गही सन्त पद आशा सारी ॥ सब०॥५॥

(३)

प्रातःकालीन गुरु-स्तुति

॥ दोहा॥

मंगल मूरति सतगुरू, मिलवैं सर्वाधार।
मंगलमय मंगल करण, विनवौं बारम्बार॥१॥
ज्ञान-उदधि अरु ज्ञान-घन, सतगुरु शंकर रूप।
नमो नमो बहु बार हीं, सकल सुपूज्यन भूप॥२॥
सकल भूल-नाशक प्रभू, सतगुरु परम कृपाल।
नमो कंज पद युग पकड़ि, सुनु प्रभु नजर निहाल॥३॥

दया दृष्टि करि नाशिये, मेरो भूल अरु चूक ।
खरो तीक्ष्ण बुधि मोरि ना, पाणि जोड़ि कहुँ कूक ।।४।।
नमो गुरू सतगुरु नमो, नमो नमो गुरुदेव ।
नमो विघ्न हरता गुरू, निर्मल जाको भेव ।।५।।
ब्रह्म रूप सतगुरु नमो, प्रभु सर्वेश्वर रूप ।
राम दिवाकर रूप गुरु, नाशक भ्रम-तम-कूप ।।६।।
नमो सुसाहब सतगुरु, विघ्न विनाशक द्याल ।
सुबुधि विगासक ज्ञान-प्रद, नाशक भ्रम-तम-जाल ।।७।।
नमो-नमो सतगुरु नमो, जा सम कोउ न आन ।
परम पुरुषहू तें अधिक, गावें संत सुजान ।।८।।

(४)

छप्पय

जय-जय परम प्रचंड, तेज तम-मोह-विनाशन ।
जय-जय तारण तरण, करन जन शुद्ध बुद्ध सन ।।
जय-जय बोध महान, आन कोउ सरवर नाहीं ।
सुर नर लोकन माहिं, परम कीरति सब ठाहीं ।।
सतगुरु परम उदार हैं, सकल जयति जय-जय करें ।
तम अज्ञान महान् अरु, भूल-चूक-भ्रम मम हरें ।।१।।
जय-जय ज्ञान अखण्ड, सूर्य भव-तिमिर- विनाशन ।
जय-जय-जय सुख रूप, सकल भव-त्रास-हरासन ।।
जय-जय संसृति-रोग-सोग, को वैद्य श्रेष्ठतर ।
जय-जय परम कृपाल, सकल अज्ञान चूक हर ।।
जय-जय सतगुरु परम गुरु, अमित-अमित परणाम मैं ।
नित्य करूँ, सुमिरत रहूँ, प्रेम-सहित गुरु नाम मैं ।।२।।

जयति भक्ति-भंडार, ध्यान अरु ज्ञान-निकेतन ।
योग बतावनिहार, सरल जय-जय अति चेतन ।।
करनहार बुधि तीव्र, जयति जय-जय गुरु पूरे ।
जय-जय गुरु महाराज, उक्ति-दाता अति रूरे ।।
जयति-जयति श्री सतगुरू, जोड़ि पाणि युग पद धरौं ।
चूक से रक्षा कीजिये, बार-बार विनती करौं ।।३।।
भक्ति योग अरु ध्यान को, भेद बतावनिहारे ।
श्रवण मनन निदिध्यास, सकल दरसावनिहारे ।।
सतसंगति अरु सूक्ष्म वारता, देहिं बताई ।
अकपट परमोदार न कछु, गुरु धरें छिपाई ।।
जय-जय-जय सतगुरु सुखद, ज्ञान संपूरण अंग सम ।
कृपा-दृष्टि करि हेरिये, हरिय युक्ति बेढंग मम ।।४।।

(५)

प्रातःकालीन नाम-संकीर्त्तन

अव्यक्त अनादि अनन्त अजय, अज आदि मूल परमातम जो ।
ध्वनि प्रथम स्फुटित परा धारा, जिनसे कहिये स्फोट है सो ।।१।।
है स्फोट वही उद्‌गीथ वही, ब्रह्मनाद शब्दब्रह्म ओ३म् वही ।
अति मधुर प्रणव ध्वनि धारवही, है परमातम-प्रतीक वही ।।२।।
प्रभु का ध्वन्यात्मक नाम वही, है सारशब्द सत्‌शब्द वही ।
है सत् चेतन अव्यक्त वही, व्यक्तों में व्यापक नाम वही ।।३।।
है सर्वव्यापिनि ध्वनि राम वही, सर्व कर्षक हरि कृष्ण नाम वही ।
है परम प्रचंडिनी शक्ति वही, है शिव-शंकर हर नाम वही ।।४।।
पुनि रामनाम है अगुण वही, है अकथ अगम पूर्णकाम वही ।
स्वर-व्यंजन रहित अघोष वही, चेतन ध्वनि-सिंधु अदोष वही ।।५।।

है एक ओ३म् सत्नाम वही, ऋषि-सेवित प्रभु का नाम वही।
X X X मुनि-सेवित गुरु का नाम वही।
भजो ॐ ॐ प्रभु नाम यही, भजो ॐ ॐ 'मेँहीँ' नाम यही ॥६॥

(६)

संतमत-सिद्धान्त

१. जो परम तत्त्व आदि-अन्त-रहित, असीम, अजन्मा, अगोचर, सर्वव्यापक और सर्वव्यापकता के भी परे है, उसे ही सर्वेश्वर-सर्वाधार मानना चाहिए तथा अपरा (जड़) और परा (चेतन); दोनों प्रकृतियों के पार में अगुण और सगुण पर अनादि-अनन्त-स्वरूपी, अपरम्पार शक्तियुक्त, देशकालातीत, शब्दातीत, नामरूपातीत, अद्वितीय, मन-बुद्धि और इन्द्रियों के परे जिस परम सत्ता पर यह सारा प्रकृति-मंडल एक महान यंत्र की नाईं परिचालित होता रहता है, जो न व्यक्ति है और न व्यक्त है, जो मायिक विस्तृतत्व-विहीन है, जो अपने से बाहर कुछ भी अवकाश नहीं रखता है, जो परम सनातन, परम पुरातन एवं सर्वप्रथम से विद्यमान है, संतमत में उसे ही परम अध्यात्म-पद वा परम अध्यात्मस्वरूपी परम प्रभु सर्वेश्वर (कुल्ल मालिक) मानते हैं।
२. जीवात्मा सर्वेश्वर का अभिन्न अंश है।
३. प्रकृति आदि-अंत सहित है और सृजित है।
४. मायाबद्ध जीव आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है। इस प्रकार रहना जीव के सब दुःखों का कारण है। इससे छुटकारा पाने के लिए सर्वेश्वर की भक्ति ही एकमात्र उपाय है।
५. मानस जप, मानस ध्यान, दृष्टि-साधन और सुरत-शब्द-योग

द्वारा सर्वेश्वर की भक्ति करके अंधकार, प्रकाश और शब्द के प्राकृतिक तीनों परदों से पार जाना और सर्वेश्वर से एकता का ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पा लेने का मनुष्य मात्र अधिकारी है।

६. झूठ बोलना, नशा खाना, व्यभिचार करना, हिंसा करनी अर्थात् जीवों को दुःख देना वा मत्स्य-मांस को खाद्य पदार्थ समझना और चोरी करनी; इन पाँचों महापापों से मनुष्यों को अलग रहना चाहिए।

७. एक सर्वेश्वर पर ही अचल विश्वास, पूर्ण भरोसा तथा अपने अंतर में ही उनकी प्राप्ति का दृढ़ निश्चय रखना, सद्गुरु की निष्कपट सेवा, सत्संग और दृढ़ ध्यानाभ्यास; इन पाँचों को मोक्ष का कारण समझना चाहिए।

(७)

श्री सद्गुरु की सार शिक्षा, याद रखनी चाहिये।
अति अटल श्रद्धा प्रेम से, गुरु-भक्ति करनी चाहिये ॥१॥
मृग वारि सम सबही प्रपञ्चन्ह, विषय सब दुख रूप हैं।
निज सुरत को इनसे हटा, प्रभु में लगाना चाहिये ॥२॥
अव्यक्त व्यापक व्याप्य पर जो, राजते सबके परे।
उस अज अनादि अनन्त प्रभु में, प्रेम करना चाहिये ॥३॥
जीवात्म प्रभु का अंश है, जस अंश नभ को देखिये।
घट मठ प्रपञ्चन्ह जब मिटैं, नहिं अंश कहना चाहिये ॥४॥
ये प्रकृति द्वय उत्पत्ति लय, होवैं प्रभू की मौज से।
ये अजा अनाद्या स्वयं हैं, हरगिज न कहना चाहिये ॥५॥
आवागमन सम दुःख दूजा, है नहीं जग में कोई।
इसके निवारण के लिये, प्रभु-भक्ति करनी चाहिये ॥६॥

जितने मनुष तनधारि हैं, प्रभु-भक्ति कर सकते सभी।
अन्तर व बाहर भक्ति कर, घट-पट हटाना चाहिये ॥७॥
गुरु जाप मानस ध्यान मानस, कीजिये दृढ़ साधकर।
इनका प्रथम अभ्यास कर, स्रुत शुद्ध करना चाहिये ॥८॥
घट-तम प्रकाश व शब्द पट त्रय, जीव पर हैं छा रहे।
कर दृष्टि अरु ध्वनि योग साधन, ये हटाना चाहिये ॥९॥
इनके हटे माया हटेगी, प्रभु से होगी एकता।
फिर द्वैतता नहिं कुछ रहेगी, अस मनन दृढ़ चाहिये ॥१०॥
पाखण्ड अरुऽहंकार तजि, निष्कपट हो अरु दीन हो।
सब कुछ समर्पण कर गुरु की, सेव करनी चाहिये ॥११॥
सत्संग नित अरु ध्यान नित, रहिये करत संलग्न हो।
व्यभिचार, चोरी, नशा, हिंसा, झूठ तजना चाहिये ॥१२॥
सब सन्तमत सिद्धान्त ये सब, सन्त दृढ़ हैं कर दिये।
इन अमल थिर सिद्धान्त को, दृढ़ याद रखना चाहिये ॥१३॥
यह सार है सिद्धान्त सबका, सत्य गुरु को सेवना।
'मेँहीँ' न हो कुछ यहि बिना, गुरु सेव करनी चाहिये ॥१४॥

(८)

संतमत की परिभाषा

१. शांति स्थिरता वा निश्चलता को कहते हैं।
२. शांति को जो प्राप्त कर लेते हैं, संत कहलाते हैं।
३. संतों के मत वा धर्म को संतमत कहते हैं।
४. शांति प्राप्त करने का प्रेरण मनुष्यों के हृदय में स्वाभाविक ही है। प्राचीन काल में ऋषियों ने इसी प्रेरण से प्रेरित होकर इसकी पूरी खोज की और इसकी प्राप्ति के विचारों को उपनिषदों में वर्णन किया। इन्हीं विचारों से मिलते हुए विचारों को कबीर साहब और गुरु नानक साहब आदि

सन्तों ने भी भारती और पंजाबी आदि भाषाओं में सर्वसाधारण के उपकारार्थ वर्णन किया, इन विचारों को ही संतमत कहते हैं; परन्तु संतमत की मूल भित्ति तो उपनिषद् के वाक्यों को ही मानने पड़ते हैं; क्योंकि जिस ऊँचे ज्ञान का तथा उस ज्ञान के पद तक पहुँचाने के जिस विशेष साधन नादानुसंधान अर्थात् सुरत-शब्द-योग का गौरव संतमत को है, वे तो अति प्राचीन काल की इसी भित्ति पर अंकित होकर जगमगा रहे हैं। भिन्न-भिन्न काल तथा देशों में संतों के प्रकट होने के कारण तथा इनके भिन्न-भिन्न नामों पर इनके अनुयायियों द्वारा संतमत के भिन्न-भिन्न नामकरण होने के कारण संतों के मत में पृथक्त्व ज्ञात होता है; परन्तु यदि मोटी और बाहरी बातों को तथा पंथाई भावों को हटाकर विचारा जाय और संतों के मूल एवं सार विचारों को ग्रहण किया जाए, तो यही सिद्ध होगा कि सब संतों का एक ही मत है।

(९)

अपराह्न एवं सायंकालीन विनती

प्रेम-भक्ति गुरु दीजिये, विनवौं कर जोड़ी।
पल-पल छोह न छोड़िये, सुनिये गुरु मोरी ॥१॥
युग-युगान चहुँ खानि में, भ्रमि-भ्रमि दुख भूरी।
पाएउँ पुनि अजहूँ नहिं, रहुँ इन्हतें दूरी ॥२॥
पल-पल मन माया रमे, कभुँ विलग न होता।
भक्ति भेद बिसरा रहे, दुख सहि-सहि रोता ॥३॥
गुरु दयाल दया करी, दिये भेद बताई।
महा अभागी जीव के, दिये भाग जगाई ॥४॥
पर निज बल कछु नाहिं है, जेहि बने कमाई।

सो बल तबहीं पावऊँ, गुरु होयँ सहाई ।।५।।
दृष्टि टिकै स्त्रुति धुन रमै, अस करु गुरु दाया ।
भजन में मन ऐसो रमै, जस रम सो माया ।।६।।
जोत जगे धुनि सुनि पड़ै, स्त्रुति चढ़ै अकाशा ।
सार धुन्न में लीन होइ, लहे निज घर वासा ।।७।।
निजपन की जत कल्पना, सब जाय मिटाई ।
मनसा वाचा कर्मणा, रहे तुम में समाई ।।८।।
आस त्रास जग के सबै, सब वैर व नेहू ।
सकल भुलै एके रहे, गुरु तुम पद-स्नेहू ।।९।।
काम क्रोध मद लोभ के, नहिं वेग सतावै ।
सब प्यारा परिवार अरु, सम्पति नहिं भावै ।।१०।।
गुरु ऐसी करिये दया, अति होइ सहाई ।
चरण-शरण होइ कहत हौं, लीजै अपनाई ।।११।।
तुम्हरे जोत-स्वरूप अरु, तुम्हरे धुन-रूपा ।
परखत रहूँ निशि-दिन गुरु, करु दया अनूपा ।।१२।।

(१०)

आरती

सत्यपुरुष की आरति कीजै ।
हृदय-अधर को थाल सजीजै ।।१।।
दामिनि जोति झकाझक जामें ।
तारे चन्द अलौकिक तामें ।।२।।
आरति करत होत अति उज्ज्वल ।
ब्रह्म की जोति अलौकिक उज्ज्वल ।।३।।
सन्मुख बिन्दु में दृष्टि समावे ।
अचरज आरति देखन पावे ।।४।।

दिव्य चक्षु सो अचरज पेखे ।
या जग-सुक्ख तुच्छ करि लेखे ॥५॥
होत महाधुन अनहद केरा ।
सुनत सुरत सुख लहत घनेरा ॥६॥
सूरत सार शबद में लागी ।
पिण्ड-ब्रह्माण्ड देइ सब त्यागी ॥७॥
आतम अरपि के भोग लगावे ।
सेवक सेव्य भाव छुटि जावे ॥८॥
हम प्रभु, प्रभु हम एकहि होई ।
द्वन्द्व अरु द्वैत रहे नहिं कोई ॥९॥
'मेँहीँ' ऐसी आरति कीजै ।
भव महँ जनम बहुरि नहिं लीजै ॥१०॥

(११)

विनती (दोहा)

तुम साहब रहमान हो, रहम करो सरकार ।
भव सागर में हौं पड़ो, खेइ उतारो पार ॥१॥
भव सागर दरिया अगम, जुलमी लहर अनंत ।
षट विकार की हर घड़ी, ऊठत होत न अंत ॥२॥
इन लहरों की असर तें, गई सुबुद्धी खोइ ।
प्रेम दीनता भजन-सँग, तीनहु बने न कोइ ॥३॥
आप अपनपौ सब भुले, लहरों के ही हेत ।
सो भूले कैसे लहौं, सुख जो शान्ती देत ॥४॥
तेहि कारण अति गरज सों, अरज करौं गुरुदेव ।
भव-जल लहरन बीच में, पकड़ि बाँह मम लेव ॥५॥

बुद्धि शुद्धि कुछ भी नहीं, कहै क्या 'मेँहीँ दास'।
सतगुरु खुद जानैं सभै, बेगि पुराइय आस ॥६॥
मेरे मुअलिज जगत में, सतगुरु बिन कोइ नाहिं।
तेहि कारण विनती करौं, हे सतगुरु तोहि पाहिं ॥७॥

(१२)

प्रभु अटल अकाम अनाम,
हो साहब पूर्ण धनी ॥१॥ हो साहब०॥
अति अलोल अक्षर क्षर न्यारा,
शुद्धातम सुख धाम ॥२॥ हो साहब०॥
अविगत अज विभु अगम अपारा,
सत्य पुरुष सतनाम ॥३॥ हो साहब०॥
सीम आदि मध अन्त विहीना,
सब पर पूरन काम ॥४॥ हो साहब०॥
बरन विहीन, न रूप न रेखा,
नहिं रघुवर नहिं श्याम ॥५॥ हो साहब०॥
सत रज तम पर पुरुष प्रकृति पर,
अलख अद्वैत अधाम ॥६॥ हो साहब०॥
अगुण सगुण दोऊ तें न्यारा,
नहिं सच्चिदानन्द नाम ॥७॥ हो साहब०॥
अखिल विश्व पुनि विश्वरूप अणु,
तुम में करें मुकाम ॥८॥ हो साहब०॥
सब तुममें प्रभु अँटै होइ तुछ,
तुम अँटो सो नहिं ठाम ॥९॥ हो साहब०॥
अति आश्चर्य अलौकिक अनुपम,
को कहि सक गुण ग्राम ॥१०॥ हो साहब०॥

त्रिपुटी द्वन्द्व द्वैत से न्यारा,
लेश न माया नाम ॥११॥ हो साहब०॥
करो न कछु कछु होय न तुम बिनु,
सबका अचल विराम ॥१२॥ हो साहब०॥
महिमा अगम अपार अकथ अति,
बुद्धि होत हैरान ॥१३॥ हो साहब०॥
अविरल अटल स्वभक्ति मोहि को,
दे पुरिये मन काम ॥१४॥ हो साहब०॥

(१३)

सर्वेश्वरं सत्य शान्ति स्वरूपं।
सर्वमयं व्यापकं अज अनूपं ॥१॥
तन बिन अहं बिन बिना रंग रूपं।
तरुणं न बालं न वृद्धं स्वरूपं ॥२॥
गुण गो महातत्त्व हंकार पारं।
गुरु ज्ञान गम्यं अगुण तेहु न्यारं ॥३॥
रुज संसृतं पार आधार सर्वं।
रुद्धं नहीं नाहिं दीर्घं न खर्वं ॥४॥
ममतादि रागादि दोषं अतीतं।
महा अद्‌भुतं नाहिं तप्तं न शीतं ॥५॥
हार्दिक विनय मम सूनो प्रभु नमामी।
हाटक वसन मणि की हू नाहिं कामी ॥६॥
राज्यं रु यौवन त्रिया नाहिं माँगूँ।
राजस रु तामस विषय संग न लागूँ ॥७॥
जन्मं मरण बाल यौवन बुढ़ापा।
जर-जर कर्‌यो रु गेर्‌यो अन्ध कूपा ॥८॥

कीशं समं मोह मुट्ठी को बाँधी।
कीचड़ विषय फँसि भयो है उपाधी॥९॥
जगत सार आधार देहू यही वर।
जतन सों सो सेऊँ जो सद्गुरु कुबुद्धि हर॥१०॥
यही चाह स्वामी न औरो चहूँ कुछ।
यहि बिन सकल भोग गन को कहूँ तुछ॥११॥

(१४)

सद्गुरु-स्तुति

नमामी अमित ज्ञान, रूपं कृपालं।
अगम बोध दाता, सुबुधि निधि विशालं॥१॥
क्षमाशील अति धीर, गंभीर ज्ञानं।
धरम कील दृढ़ थीर, सम धीर ध्यानं॥२॥
जगत्-त्राणकारी, अघारी उदारं।
भगत प्राण रूपं, दया गुण अपारं॥३॥
नमो सत्गुरुं, ज्ञान दाता सुस्वामी।
नमामी नमामी, नमामी नमामी॥४॥
हरन भर्म भूलं, दलन पाप मूलं।
करन धर्म पूलं, हरन सर्व शूलं॥५॥
जलन भव विनाशन, हनन कर्म पाशन।
तनन आश नाशन, गहन ज्ञान भाषण॥६॥
युगल रत्न पुरुषार्थ परमार्थ दाता।
दया गुण सुमाता, अमर रस पिलाता॥७॥
नमो सत्गुरुं सर्व, पूज्यं अकामी।
नमामी नमामी, नमामी नमामी॥८॥
सरब सिद्धि दाता, अनाथन को नाथा।
सुगुण बुधि विधाता, कथक ज्ञान गाथा॥९॥

परम शांतिदायक, सुपूज्यन को नायक ।
परम सत्सहायक, अधर कर गहायक ॥१०॥
महाधीर योगी, विषय-रस-वियोगी ।
हृदय अति अरोगी, परम शान्ति-भोगी ॥११॥
नमो सद्गुरुं सार, पारस सुस्वामी ।
नमामी नमामी, नमामी नमामी ॥१२॥
महाघोर कामादि दोषं विनाशन ।
महाजोर मकरन्द मन बल हरासन ॥१३॥
महावेग जलधार, तृष्णा सुखायक ।
महासुक्ख भण्डार, सन्तोष दायक ॥१४॥
महा शांति-दायक, सकल गुण को दाता ।
महा मोह-त्रासन, दलन धर सुगाता ॥१५॥
नमो सद्गुरुं, सत्य धर्मं सुधामी ।
नमामी नमामी, नमामी नमामी ॥१६॥
जो दुष्टेन्द्रियन नाग गण विष अपारी ।
हैं सद्गुरु सुगारुड़, सकल विष संघारी ॥१७॥
महा मोह घनघोर, रजनी निविड़ तम ।
हैं सद्गुरु वचन दिव्य सूरज किरण सम ॥१८॥
महाराज सद्गुरु हैं, राजन को राजा ।
हैं जिनकी कृपा से सरैं सर्व काजा ॥१९॥
भने 'मेँहीँ' सोई परम गुरु नमामी ।
नमामी नमामी, नमामी नमामी ॥२०॥

(१५)

सद्गुरु नमो सत्य ज्ञानं स्वरूपं ।
सदाचारि पूरण सदानन्द रूपं ॥१॥

तरुण मोह घन तम विदारण तमारी।
तरण तारणंऽहं बिना तन विहारी ॥२॥
गुण त्रय अतीतं सु परमं पुनीतं।
गुणागार संसार द्वन्द्वं अतीतं ॥३॥
रुज संसृतं वैद्य परमं दयालुं।
रुलकर प्रभू मध्य प्रभू ही कृपालुं ॥४॥
मननशील समशील अति ही गंभीरं।
मरुत मदन मेघं सुयोगी सुधीरं ॥५॥
हानि रु लाभं युगल मध समं थीर।
हालन चलन शुभ्र इन्द्रिय दमन वीर ॥६॥
राग रोषं बिनं शुद्ध शांतिं स्वरूपं।
राकापतिं तुल्यं शीतल अनूपं ॥७॥
जरा जन्म मृत्युं परं पार धामी।
जगत आत्मतुल्यं हृदय अति अकामी ॥८॥
कीरति सु भृंगं समं सो सु स्वामी।
कीटन्ह स्वयं सम करन गुरु नमामी ॥९॥
जगत त्राण कर्त्ता रु हर्त्ता भवजालं।
जरा जन्म-हर्त्ता रु कर्त्ता सु भालं ॥१०॥
यज्ञं जपं तप फलं हूँ न कामी।
यक सद्गुरुं पद नमामी नमामी ॥११॥

(१६)

छन्द

जय जयति सद्गुरु जयति जय जय, जयति श्री कोमल तनुं।
मुनि वेष धारन करन मुनिवर, जयति कलिमल दल हनं॥

जय जयति जीवन मुक्त मुनिवर, शीलवन्त कृपालु जो।
सो कृपा करि कै करिय आपन, दास प्रभु जी मोहि को॥
जय जयति सद्‌गुरु जयति जय जय, सत्य सत् वक्ता प्रभू।
हरि कुमति भर्महिं सुमति सत्य को, पाहि मोहि दीजै अभू॥
यह रोग संसृति व्यथा शूलन्ह, मोह के जाये सभै।
अति विषम सर बहु होय बेध्यो, मोहि अब कीजै अभै॥
प्रभु! कोटि कोटिन्ह बार इन्ह दुख, मोहि आनि सतायेऊ।
यहु बार जहु एक वचन आशा, आय तहु में समायेऊ॥
बिनु तुव कृपा को बचि सकै, तिहु काल तीनहु लोक में।
प्रभु शरण तुव आरत जना तू, सहाय जन के शोक में॥

(१७)

कजली

सतगुरु सुख के सागर, शुभ गुण आगर, ज्ञान उजागर हैं ॥ टेक ॥
अन्तर पथ गामी, अति निःकामी, अन्तर्यामी हैं ।
त्रैगुण पर योगी, हरि-रस भोगी, अति निःसोगी हैं ॥१॥
थिर बुद्धि सुजाना, यती सयाना, धरि ध्वनि ध्याना हैं ।
सो ध्वनि सारा, 'मेँहीँ' न्यारा, सतगुरु धारे हैं ॥२॥

(१८)

चौपाई

गुरू गुरू मैं करौं पुकारा।
सतगुरु साहब सुनो हमारा॥
अघ औगुण दुख मेटनहारा।
सतगुरु साहब परम उदारा॥

अपनि विरद प्रभु आप सम्हारो।
मुझ अघ-रूपहिं पार उतारो॥
मैं अति नीच निकाम अनाड़ी।
तुम दयाल प्रभु अगम अपारी॥
मैं बुधि-हीन शुद्धि कछु नाहीं।
सन्तत रहुँ मन नीच के पाहीं॥
तन मन गुण इन्द्रिन का बन्दी।
होइ भोगुँ विष रस आनन्दी॥
पाँच तत्त्व प्रकृति पंच बीसा।
के वश तिन्ह मुख बरतौं ईशा॥
काम क्रोध मद लोभा मोहा।
नींद भूख आलस तन छोहा॥
चञ्चलपन कटुता असहन्ता।
वृथा गुणावन प्रण विचलन्ता॥
सब मिलि करैं उपद्रव भारी।
सुस्थिरता नहिं सकौं सम्हारी॥
निज वश चलै न कछु इन्ह पाहीं।
तुम तजि और न कोइ सहाई॥
अस विचारि प्रभु दया करीजै।
चरणन बल मोहू को दीजै॥
सुस्थिरता के बाधक जेते।
तुम पद बल ले जीतउँ तेते॥
जीति थीर होइ पद-रज ध्याउँ।
ध्यावत यम-हद ते बहराउँ॥
हो दयाल अस कीजिय दाया।
मो दुखिया कहँ दीजिय छाया॥

(१९)

गुरुदेव दानि तारन, सब भव व्यथा विदारन,
मम सकल काज सारन, अपना दरस दिखा दो ॥१॥
विषयों में ही मन लागे, सत्संग से हटि भागे,
मोको करो सभागे, सत्संग में लगा दो ॥२॥
जब जाप जपन लागूँ, तव ध्यान में जब पागूँ,
चिन्तन सभी तब त्यागूँ, ऐसी लगन लगा दो ॥३॥
दृष्टि अड़ै सुखमन में, मन मगन हो भजन में,
ललचे न कोउ रँग में, इक बिन्दु को धरा दो ॥४॥
जौं सूर्त दल सहस में, वा त्रिकुटी महल में,
चढ़ि जाय तहँहुँ बिन्दु में, मम दृष्टि को लगा दो ॥५॥
कोउ रूप को न देखूँ, इक बिन्दु सबमें पेखूँ,
रिधि सिद्धि को न लेखूँ, ऐसी सुरत सिमटा दो ॥६॥
घण्ट शंख ना नगारा, मुरली न बीन तारा,
की धुन में फँस रहूँ मैं, गुरु ऐसे ही बना दो ॥७॥
धुन अनाहत की हो, घट-घट में जो सतत हो,
जो सार धुन अहत हो, तिसमें सुरत लगा दो ॥८॥
जो जगत से विलक्षण, जिसमें न विषय लक्षण,
जो एकरस सकल क्षण, तिसमें मुझे रमा दो ॥९॥
गुरु शरण हूँ तुम्हारी, भावे करो हमारी,
एक आस है तिहारी, भव-फन्द से छोड़ा दो ॥१०॥
सब औगुणों से पूरे, हौं मैं गुरू जरूरे,
तुमसे न कुछ भी दूरे, औगुण सकल जला दो ॥११॥
कपटी कपूत जौं हूँ, तुम्हरो कहाउँ तौ हूँ,
शरणी तिहार ही हूँ, चाहो सो मोहि बना दो ॥१२॥

(२०)

गुरु मम सुरत को गगन पर चढ़ाना ।
दया करके सतधुन की धारा गहाना ।।
अपनी किरण का सहारा गहाकर ।
परम तेजोमय रूप अपना दिखाना ।।
साधन-भजन-हीन मों सम न कोऊ ।
मेरी इस दुर्बलता को प्रभु जी हटाना ।।
पापों के संस्कार जन्मों के मेरे ।
हैं जो दया कर क्षमा कर मिटाना ।।
तुम्हरो विरद गुरु है पतितन को तारन ।
अपनो विरद राखि 'मेँहीँ' निभाना ।।

(२१)

गुरु खोलिये वज्र कपाट,
अन्धेरी सन्मुख की ।।१।।
काया दुर्ग दुखद बन्दिखाना,
जले अग्नि या में दुख की ।।२।।
हम बन्दी युग-युग से जलते,
चहैं सहारा तुअ रुख की ।।३।
हम दिशि दृष्टि कृपा की धारिये,
खोलि दीजिये पथ सुख की ।।४।।
चरण-शरण अब आये तुम्हारी,
सुनिये अर्ज दुखियन मुख की ।।५।।
दीन हीन दुख दारिद घेरे,
हैं हम अन्त करिय दुख की ।।६।।

'मेँहीँ' मेँहीँ विन्दु-द्वार होइ,
घैंचि दीजिये घर सुख की ॥७॥

(२२)

गुरु कीजै भव-निधि पार,
स्वामी हो दयालु जी ॥१॥
नौ द्वारन दस चारि इन्द्रिन में,
भव दुख सहउँ अपार ॥२॥
जन्म मरण दुख अगणित भोगे,
बिनु प्रभु पद आधार ॥३॥
तन धन परिजन मान की ममता,
फँसि खोयो ततु सार ॥४॥
मन अति कठिन कराल प्रभू हो,
तजय न विषय विकार ॥५॥
मन दृढ़ हो न लागु प्रभु पद में,
होत न मो से सम्हार ॥६॥
युगन युगन सों यहि विधि अहऊँ,
अब गुरु करिय उबार ॥७॥
ईश्वर देव पितर परिजन सों,
होत न यह उपकार ॥८॥
यह 'मेँहीँ' होवत गुरु से ही,
गुरु की अमित बलिहार ॥९॥

(२३)

मोहि दे दो भगती दान,
सतगुरु हो दाता जी ॥१॥

दस दिशि विषय जाल से हूँ घेरो,
टरत नहीं अज्ञान ॥२॥
गाढ़ अविद्या प्रबल धार में,
भये हूँ बहि हैरान ॥३॥
निज बुधि बल को कछु न भरोसा,
गुरु तव आस न आन ॥४॥
जग के सब सम्बन्धिन देखे,
तुम बिनु हित न महान ॥५॥
बाहर अन्तर भक्ति कराई,
दीजै आतम ज्ञान ॥६॥
नात्म द्वैत से बाहर कीजै,
यहि विनती नहिं आन ॥७॥

(२४)

छन्द

दया प्रेम सरूप सतगुरु, मोरि विनती मानिये।
मैं अधम कामी कुलच्छन, मलिन मति मोहि जानिये ॥१॥
पर दुख दुखी तुव भक्त गुण, पुनि पर सुखी भक्तहु सुखी।
अस मैं नहीं सपनेहु कभुँ, मैं दुखद करूँ सब जग दुखी ॥२॥
परदार परधन पर कभूँ, नहिं भक्त निज मन फेरहीं।
मम मन फिरै तिन्ह पर सदा, कोइ कोटि कोटिन घेरहीं ॥३॥
दया क्षमा संयुक्त भक्तन्ह, रहैं शीतल सर्वदा।
अति दयाहीन कठोर हूँ मैं, तपउँ अगनी सम सदा ॥४॥
कहँ लगि कहुँ निज मति की उलटी, रीति प्रभु सुनि लीजिये।
तनिकहुँ जतन नाहीं मुझे, जेहि तुअ चरण चित दीजिये ॥५॥

अस पाउँ सतसंग सिखबहू , चलुँ राह सोइ भक्तन्ह चलैं ।
न तो जलत रहिहौं जगत में, सतगुरु-विमुख जहँ नित जलैं ॥६॥
गुरु डरत हूँ अस सुनि सही, मन निज स्वभाव न त्यागई ।
कभुँ निजउ देउँ सुसिखबहू, पर मनहिं कछु नहिं लागई ॥७॥
हारे अहुँ मन ते गुरू, अब टेर के तुमको कहूँ ।
हो दीनबन्धु दयाल सतगुरु, जतन सो करु पद गहूँ ॥८॥
प्रकाश-मण्डल पद तुम्हारे, मैं पड़ा तम-कूप में ।
अब त्राहि-त्राहि पुकार करुँ, गुरु ले चढ़ो दिव रूप में ॥९॥
तिल राह होइ जो उठन कहेउ, सो राह मोहि दीखत नहीं ।
गुरु करि दया हरि तम के मण्डल, पार तिल करु मोहि गही ॥१०॥
तारा-मण्डल में चढ़ाओ, उठो ले दल सहस को ।
जहँ ज्योति जगमग चन्द झलकत, गुरु दिखाओ रहस को ॥११॥
त्रिकुटी तिहु गुण मूल घर, जहँ ब्रह्म पर राजत रहैं ।
गुरु करउँ विनती चरण पड़ि, करु जतन जा या घर लहैं ॥१२॥
यहँ सुरज ब्रह्म-प्रकाश गुरु, पुनि ले चलो येहि आगरे ।
जहँ शुद्ध ब्रह्म विराजते, रहि सुन्न देश उजागरे ॥१३॥
मानसरवर ले धँसो मोहि, दो धरा निज नाम ही ।
निज नाम पूरण काम अमृत, धार सार सो नाम ही ॥१४॥
पुनि देहु बल चढ़ँ महासुन्नहिं, अवर बल ते तरन को ।
भँवर गुफा में चढ़ा पुनि, जहँ न भवभय टरन को ॥१५॥
करि कृपा तहँ चढ़न को बल, सतगुरू मोहि दीजिये ।
यहि सतलोक में आनिके गुरु, मोहि निर्मल कीजिये ॥१६॥
पुनि नाम निर्गुण पार करिके, अनाम धाम मिलाइये ।
यहि भाँति निज घर लाइ मोहि, प्रभु निज कृपा दरसाइये ॥१७॥

(२५)

हे प्रेम रूपी सतगुरु, प्रेमी मुझे बना दो ॥ टेक ॥
नर-नारि रूप सारे, मन मोहैं जो हमारे,
आकर्षि प्रेम लेवें, इनसे लगन छोड़ा दो ॥१॥
ये स्थूल दृश्य जेते, मोको जो खैंचि लेते,
मम प्रेम धार खोते, इनसे मुझे हटा दो ॥२॥
चौभुज औ अष्टभुज जो, अथवा अनेकभुज जो,
आश्चर्य तेज पुञ्ज जो, सबसे सुरत फुटा दो ॥३॥
रस शब्द गन्ध परसन, करते जो चित्त कर्षन,
करि प्रेम धार वर्षन, इनसे मुझे छुटा दो ॥४॥
इक तजि अनुभवानन्दं, सारे आनन्द द्वन्द्वं,
है द्वन्द्व अनात्म फन्दं, अनात्म-आत्म फुटा दो ॥५॥
अकल अभेद अछेदं, अनाम अद्वन्द्व अखेदं,
सर्वपर अनूप रूपं, तिस रूप में फँसा दो ॥६॥
तुम्हरा यह रूप जानूँ, अपना भी यही मानूँ,
तुम हम दुई मिटाकर, इक एकही बना दो ॥७॥

(२६)

बार-बार करुँ वीनती, गुरु साहब आगे।
कृपादृष्टि हेरिय गुरू, चित चरणन लागे ॥१॥
अति दयाल दे चित्त सुनो, मम हाल मलीना।
या जग मो सम और ना, दुख-दूषण-भीना ॥२॥
चहुँ खानिन में बार बहु, भरमेउँ अज्ञाना।
असीम यातना सहेउँ, तुम पद नहिं चीना ॥३॥
अब गुरु दाता कृपा करी, दीन्हों नर देही।
अजहूँ फिरउँ भुलान, काल के मारग में ही ॥४॥

तुम बिन ऐसो कोउ ना, सुनु सतगुरु पूरे।
काल-राह से घैंचि के, मोहि करिहैं दूरे ॥५॥
काम-लहरि तें माति के, करुँ आनहिं आना।
अन्ध होइ भोगन फँसूँ, सत पंथ भुलाना ॥६॥
क्रोध-अगिन में नित जलूँ, नहिं समझउँ काहू।
मात पिता अरु हितहु से, चलुँ टेढ़ी राहू ॥७॥
लोभ-कुण्ड में पैठि के, करुँ नित जो कर्मा।
पापरूप दृष्टी भई, कछु सूझ न धर्मा ॥८॥
सतगुरु दानि दयाल हो, सुनिये अब मेरी।
अन्ध होइ दुख बहु सहूँ, करु दृष्टि उजेरी ॥९॥
तुम बिन दाता कोउ ना, सब सन्त बखानें।
दृष्टि दान मोहि दीजिये, मेटिय अन्ध खानें ॥१०॥
और अमित सुनि लीजिये, मोरी अघ करनी।
जेहि वश सकउँ न दृढ़ धरी, तुम्हरी सत शरणी ॥११॥
मोह-दुर्ग ते स्वपनेहु, नहिं बाहर जाऊँ।
जाते दुःख अगणित सहूँ, नहिं छूटन पाऊँ ॥१२॥
दया करो दाता मेरे, तुम बन्दी-छोरा।
यह सब बन्दी छोड़िये, बहु करौं निहोरा ॥१३॥
अहंकार ते मस्त होइ, मैं-मोरि बखानौं।
या विधि हठ वश मान में, नहिं काहू जानौं ॥१४॥
करौं अनेक कुचाल प्रभु, कत कहौं बखानी।
तुव सेवा की चाल सभे, मम हिये भुलानी ॥१५॥
निज अवगुण जत सबन को, नहिं परखन पाऊँ।
तुम सतगुरु सर्वज्ञ हो, जानहु सब ठाऊँ ॥१६॥

मम अन्तर अघ जानि के, सब देहु मिटाई ।
अघनाशन दाया करो, अघ देहु नसाई ॥१७॥
गुनह मोटरी सिर मेरे, तौलत कठिनाई ।
या तर दबि अब मरत हौं, बिन तुम्हरि सहाई ॥१८॥
नहिं सहाइ तुम बिन कोइ, सुनु सतगुरु दाता ।
गुनह मोटरी फेंकिये, दइ मो सिर लाता ॥१९॥
अघ औगुण मति संग से, मम दृष्टि मलीना ।
दया करो साईं मेरे, मोहि जानिय दीना ॥२०॥
तुम बिनु कोउ नहिं अमल करै, दृष्टी कहँ साईं ।
दया धार बरषा करी, देहु दृष्टि बनाई ॥२१॥
दया प्रेम बरषा करो, हो प्रेम सरूपा ।
प्रेम नाम सतनाम की, मोहि मिलवहु रूपा ॥२२॥

(२७)

बरसाती

अपनी भगतिया सतगुरु साहब, मोहि कृपा करि देहु हो ।
जुगन-जुगन भव भटकत बीते, अब भव बाहर लेहु हो ॥१॥
पशु पक्षी कृमि आदिक योनिन, में भरमेउ बहुबार हो ।
नर तन अबहिं कृपा करि दीन्हों, अब प्रभु करो उबार हो ॥२॥
हरहु भव दुख देहु अमर सुख, सर्व दाता समरत्थ हो ।
जो तुम चाहिहु होइहिं सोई, सब कुछ तुम्हरे हत्थ हो ॥३॥
करहु अनुग्रह प्रीतम साहब, तुम अंशक मैं अंश हो ।
तुम सूरज मैं किरण तुम्हारी, तुम वंशक मैं वंश हो ॥४॥
मोहि तोहि इतनेहि भेद हो साहब, यहि भेद भव दुःख मूल हो ।
करो कृपा नासो यहि भेदहिं, होउ अति ही अनुकूल हो ॥५॥
आस त्रास भय भाव सकल ही, मम मन कर जत जाल हो ।
सकल सिमिटि तुम्हरो पद लागे, 'मेँहीँ' के यहि अर्ज हाल हो ॥६॥

(२८)

पुकार

सतगुरु दाता सतगुरु दाता सतगुरु दाता सतगुरु दाता ।
अरज सुनो हे मेरे प्रीतम तात पिता हे सतगुरु दाता ।।टेक।।
हो दयाल दातार महा सुखदाई ।
अघनाशन सुख देन कृपा अधिकाई ।।१।।
जुग जुगान ते अहूँ पड़े दूखन में ।
सुधि बुधि गई सब भूलि माया भुखन में ।।२।।
मन-इन्द्रिन की फाँस गले हैं मेरे ।
ताते वश होइ सदा रहूँ यम चेरे ।।३।।
काम क्रोध मद लोभ सतावै हरदम ।
नित पड़ा रहूँ इन्ह बीच न पाऊँ शम-दम ।।४।।
सुख पावन मन ठानि दौड़ि जहँ जाऊँ ।
दुख अगिन प्रबल होइ जरत तहाँ ही पाऊँ ।।५।।
रवि कर जल मृग देखि दौड़ि दुख पावै ।
तिमि जग सुख मध दुख कुण्ड मोहि को नावै ।।६।।
हूँ पड़ा दुखन के माहिं प्रबल मुरछाई ।
निज संकट सकुँ न बखानि जो पाउँ सदाई ।।७।।
हूँ अन्धकार बिच पड़ा न पाउँ प्रकाशा ।
नहिं सकूँ जान जित अहै प्रकाश-निवासा ।।८।।
हो सर्वज्ञ दयाल प्रभू दातारा ।
गुरु दीन-बन्धु तुम जानहु मर्म हमारा ।।९।।
करु दया कहूँ मैं याहि पुकारि पुकारी ।
हो दीन-बन्धु सुख-सिन्धु दीन-हितकारी ।।१०।।

दुख दलन जलन कर हतन पतन यम-जारी।
कोमल चित दीन-दयाल कृपा धर भारी ॥११॥
यम-फन्दन ते वेगि निकालि के मोही।
निज विरद सम्हारो नाथ! कहूँ मैं तोही ॥१२॥
तम-कूप ते खैंचि के मोहि प्रकाश में लाओ।
पुनि शब्द-बाँह निज देइ पास बैठाओ ॥१३॥
यहि विधि अपनाइ के मोहि छोड़ाइये यम से।
होइ आरत करूँ पुकार नाथ मैं तुम से ॥१४॥
नहिं आन कोऊ जहँ जाइ के करौं पुकारा।
यम-फन्द-निकन्दन एकहि तुम दातारा ॥१५॥
अब सतगुरु सतगुरु सतगुरु नित-नित गाऊँ।
प्रभु रीझि देहु निज चरण-शरण में ठाऊँ ॥१६॥

(२९)

बरसाती

सतगुरु दरस देन हित आए, भाग जगे हमरे ॥ टेक॥
आनन्द मंगल पूरि रहे सब शुभ-शुभ भा सगरे।
पाप समूह दरस ते भागे पुण्य सकल डगरे ॥१॥
परम उछाह आजु सभ सखिया सतगुरु पद भज रे।
तन मन धन आतम करि अर्पण 'मेँहीँ' आजु तरे ॥२॥

(३०)

भजु मन सतगुरु सतगुरु सतगुरु जी ॥१॥
जीव चेतावन हंस उबारन,
भव भय टारन सतगुरु जी। भजु० ॥२॥

भ्रम तम नाशन ज्ञान प्रकाशन,
हृदय विगासन सतगुरु जी। भजु०॥३॥
आत्म अनात्म विचार बुझावन,
परम सुहावन सतगुरु जी। भजु०॥४॥
सगुण अगुणहिं अनात्म बतावन,
पार आत्म कहैं सतगुरु जी। भजु०॥५॥
मल अनात्म ते सुरत छोड़ावन,
द्वैत मिटावन सतगुरु जी। भजु०॥६॥
पिण्ड ब्रह्माण्ड के भेद बतावन,
सुरत छोड़ावन सतगुरु जी। भजु०॥७॥
गुरु-सेवा सत्संग दृढ़ावन,
पाप निषेधन सतगुरु जी। भजु०॥८॥
सुरत-शब्द मारग दरसावन,
संकट टारन सतगुरु जी। भजु०॥९॥
ज्ञान विराग विवेक के दाता,
अनहद राता सतगुरु जी। भजु०॥१०॥
अविरल भक्ति विशुद्ध के दानी,
परम विज्ञानी सतगुरु जी। भजु०॥११॥
प्रेम दान दो प्रेम के दाता,
पद राता रहें सतगुरु जी। भजु०॥१२॥
निर्मल युग कर जोड़ि के विनवौं,
घट-पट खोलिय सतगुरु जी। भजु०॥१३॥

(३१)

सतगुरु जी से अरज हमारी ॥ टेक ॥
मैं एक दीन मलीन कुटिल खल, सिर अघ पोट है भारी।
कामी क्रोधी परम कुचाली, हूँ कुल अघन सम्हारी ॥
अधम मो ते नहिं भारी ॥१॥

सुनत कठिनतर गति अधमन की, काँपत हृदय हमारी ।
कवन कृपालु जो अधम उधारें, जहँ तहँ करउँ पुछारी ॥
सुनउँ इक नाम तुम्हारी ॥२॥
अधम उधारन हो, अस सुनउँ, तेहि ते कहउँ पुकारी ।
मोसे अधम को जो सको तारी, तो तुम्हरी बलिहारी ॥
सुनो चित्त दै अघहारी ॥३॥
सतगुरु देवी साहब जी के पद में विनती हर बारी ।
'मेँहीँ' पतित को हो पतित उधारन, अबकी लेहु उधारी ॥
मैं जाउँ हर घड़ि बलिहारी ॥४॥

(३२)

सतगुरु साहब की बलिहारी ।।टेक॥
जग तम-कूप बड़ा ही भयंकर, तन बिच घोर अंधारी ।
ता में जीव सहे नाना दुःख, सुधि निज घर की बिसारी ॥
सतगुरु बिन परम दुःखारी ॥१॥
सतगुरु छाड़ि नहीं कोउ दूसर, भेद जो कहैं पुकारी ।
जाते छूटै घोर अंधारी, जीव चले भव पारी ॥
जहाँ निज घर सुख सारी ॥२॥
सतगुरु कहैं पुकारि पुकारी, भवन गवन पथ न्यारी ।
ना पानी महँ ना पाथर महँ, बड़ वैराट में ना री ॥
सोहै निज घट में सँवारी ॥३॥
बाबा देवि साहब सतगुरु पूरे, 'मेँहीँ' पुकारि पुकारी ।
कहत सकल सौं जौं निज घर चहु, गहु सतगुरु शरणा री ॥
तो पैहो निज घर-पथ सारी ॥४॥

(३३)

कहरा

ध्यानाभ्यास करो सद सदही, चातक दृष्टि बनाई हो।
लखत लखत छवि बिन्दु प्रभू की, ज्योति मंडल धँसि धाई हो ॥१॥
राम नाम धुन सतधुन सारा, शब्द केन्द्र तें आई हो।
ता धुन भजत मिलो प्रभु से निज, आवागमन नसाई हो ॥२॥
गुरु की भक्ति साधु की सेवा, बिनु नहिं कछुहू पाई हो।
याते भजो गुरू गुरु नित ही, रहो चरण लौ लाई हो ॥३॥
विन्दु चन्द तब सूर प्रकाशे, शब्द-लहर लहराई हो।
जो अति सिमिटि रहै सुखमन में, ताको पड़ै जनाई हो ॥४॥
'मेँहीँ' सतगुरु की बलिहारी, जिन यह युक्ति बताई हो॥
धन्य-धन्य सतगुरु मेरे पूरे, निसदिन तुव शरणाई हो ॥५॥

(३४)

नैनों के तारे चश्म रोशन क्यों नजर आते नहीं।
रूह रोशन आत्म भूषण क्यों पकड़ जाते नहीं ॥१॥
नख से सिख लौं बिन्दु प्रति में तुम रमे हो हे प्रभो।
प्रति पकड़ में तुम भरे हो क्यों धरे जाते नहीं ॥२॥
सर्व रूपी हो कहाते फिर अरूपी हो गये।
सूक्ष्मतर मन बुद्धि हू से क्यों गहे जाते नहीं ॥३॥
प्रति अंश में अंतर व बाहर घट के व्यापक व्योम ज्यों।
त्योंहि तुम हू सर्वव्यापक क्यों प्रकट होते नहीं ॥४॥

तुम में निज में भेद बुद्धी को जो सकते हैं मिटा।
वह तुम्हीं तुम वही 'मेँहीँ' प्रश्न पुनि रहते नहीं ॥५॥

(३५)

ईश्वर-स्वरूप-निरूपण

प्रभु अकथ अनामी सब पर स्वामी, गो गुण प्रकृति परे ॥१॥
हो सरब निवासी राम कहासी, सबही से न्यार हरे ॥२॥
अव्यक्त अगोचर क्षर अक्षर पर, जो पद संत धरे ॥३॥
हैं अनादि अनन्तं सर्व प्रिय कन्तं, व्यापक हैं सगरे ॥४॥
प्रभु हैं सर्वदेशी और अदेशी, व्यापकपनहु परे ॥५॥
'मेँहीँ' कर जोरे प्रभु को भजो रे, प्रभु भजि जीव तरे ॥६॥

(३६)

प्रभु वरणन में आवैं नाहीं,
अकथ अनामी अहैं सब माहीं ॥१॥
प्रत्येक परमाणु अणु, लघु दीर्घ सर्व तनु,
प्रभु जी व्यापक जनु गगन रहाहीं ॥२॥
दृश्यऽरु अदृश्य सब, सहित प्रकृति भव,
प्रभु में अँटहि प्रभु अँटि न सकाहीं ॥३॥
अनादि अनन्त प्रभु, निर अवयव विभु,
अछय अजय अति सघन रहाहीं ॥४॥
गो गुण अगोचर, आत्म गम्य सूक्ष्म तर,
गुरु-भेद लहि भजि 'मेँहीँ' गति पाहीं ॥५॥

(३७)

कजली

प्रभु अकथ अनाम अनामय स्वामी, गो गुण प्रकृति परे ॥ टेक ॥
क्षर अक्षर प्रभु पार परमाक्षर, जा पद सन्त धरे ।
अगुण सगुण पर पुरुष प्रकृति पर, सत्त असतहु परे ॥१॥
अनन्त अपारा सार के सारा, जा भजि जीव तरे ।
'मेँहीँ' कर जोरे प्रभुहिं निहोरे, करु उधार हमरे ॥२॥

(३८)

पीव प्यारा

है जिसका नहीं रंग नहिं रूप रेखा ।
जिसे दिव्य दृष्टिहु से नहिं कोइ देखा ॥
ये इन्द्रिन चतुर्दश में जो ना फँसा है ।
तथा कोई बन्धन से जो ना कसा है ॥
वही है परम पुर्ष सबको अधारा ।
सोई पीव प्यारा सोई पीव प्यारा ॥१॥
त्रितन पाँच कोषन में जो ना बझा है ।
जो लम्बा न चौड़ा न टेढ़ा-सोझा है ॥
नहीं जो स्थावर न जंगम कहावे ।
नहीं जड़ न चेतन की पदवी को पावे ॥
जो है परम पुर्ष सबको अधारा ।
सोई पीव प्यारा सोई पीव प्यारा ॥२॥
नहीं आदि नहिं मध्य नहिं अन्त जाको ।
नहिं माया के ढक्कन से है पूर्ण ढाको ॥
पुरणब्रह्म पदवीहु से जो तुलै ना ।
अगुण वा सगुण पदहू जामें लगै ना ॥

जो है परम पुर्ष सबको अधारा।
सोई पीव प्यारा सोई पीव प्यारा ।।३।।
सभी में भरा अंश रहता जिसी का।
परन्तु जो होता न आकृत किसी का ।।
हैं निर्गुण सगुण ब्रह्म दोउ अंश जाको।
समता न पाता कोई भी है जाको ।।
जो है परम पुर्ष सबको अधारा।
सोई पीव प्यारा सोई पीव प्यारा ।।४।।
ब्रह्म सच्चिदानन्द अरु वासनात्मक।
मनोमय तथा ज्ञानमय प्राण आत्मक ।।
ओ ओंकार शब्द ब्रह्म औ विश्वरूपी।
ये सप्त ब्रह्म श्रेणी जिसे न पहूँची ।।
जो है परम पुर्ष सबको अधारा।
सोई पीव प्यारा सोई पीव प्यारा ।।५।।
नहीं जन्म जाको नहीं मृत्यु जाको।
नहीं दस न चौबीस अवतार जाको ।।
अखिल विश्व में हू जो सब ना समाता।
अपरा परा पूरि नहिं अन्त पाता ।।
जो है परम पुर्ष सबको अधारा।
सोई पीव प्यारा सोई पीव प्यारा ।।६।।
नहीं सूर्य्य सकता जिसे कर प्रकाशित।
न माया ही सकती जिसे कर मर्यादित ।।
जो मन बुद्धि वाणी सबन को अगोचर।
बताया हो चुप जिसको वाह्व मुनिवर ।।
जो है परम पुर्ष सबको अधारा।
सोई पीव प्यारा सोई पीव प्यारा ।।७।।

ज्यों का त्यों ही सदा जो सबके प्रथम से ।
जिसे उपमा देता बने कुछ न हम से ॥
है जिसके सिवा आदि सबका ही भाई ।
अन आदि एकही जो ही कहाई ॥
जो है परम पुर्ष सबको अधारा ।
सोई पीव प्यारा सोई पीव प्यारा ॥८॥

(३९)

प्रभु तोहि कैसे देखन पाऊँ ।
तन इन्द्रिन संग माया देखूँ,
मायातीत धरहु तुम नाऊँ ॥१॥
मेधा मन इन्द्रिन गहें माया,
इन्हमें रहि माया लिपटाऊँ ।
इन्द्रिन मन अरु बुद्धि परे प्रभु,
मैं न इन्हें तजि आगे धाऊँ ॥२॥
करहु कृपा इन्ह संग छोड़ावहु,
जड़ प्रकृति कर पारहि जाऊँ ।
'मेँहीँ' अस करुणा करि स्वामी,
देहु दरस सुख पाइ अघाऊँ ॥३॥

(४०)

नैन सों नैनहिं देखिय जैसे ।
त्वचहिं त्वचा सुख पाइये जैसे ॥१॥
आत्म परमात्महिं पेखै तैसे ।
आत्म परमात्म मिलन सुख तैसे ॥२॥
यह दरस परस अति दुर्लभ बात ।
बुद्धि परे मन पर की बात ॥३॥

ध्यावै अति लौ लावै जोइ।
अरु सदाचार पालै दृढ़ होइ ॥४॥
सो 'मेँहीँ' सो दुर्लभ पावै।
नहिं फिर भव महँ भटका खावै ॥५॥

(४१)

मेधा मन संग जेते दरशन।
मेधा मन संग जेते परशन ॥१॥
दिव्य दृष्टि से हू जो दरशन।
दिव्य अंग का हू जो परशन ॥२॥
सब मायामय दरशन परशन।
प्रभु दरश परश हैं ये हीं सतजन ॥३॥
प्रकृति पार मन बुद्धि के पारा।
जड़ के सब आवरणन पारा ॥४॥
गुरु हरि कृपा से अस हो जोई।
'मेँहीँ' दरसन पावै सोई ॥५॥

(४२)

आत्मा

नहीं थल नहीं जल नहीं वायु अग्नी।
नहीं व्योम ना पाँच तन्मात्र ठगनी ॥
ये त्रय गुण नहीं नाहिं इन्द्रिन चतुर्दश।
नहिं मूल प्रकृति जो अव्यक्त अगम अस ॥
सभी के परे जो परम तत्त्व रूपी।
सोई आत्मा है सोई आत्मा है ॥१॥
न उद्भिद् स्वरूपी न उष्मज स्वरूपी।
न अण्डज स्वरूपी न पिण्डज स्वरूपी ॥

नहीं विश्व रूपी न विष्णु स्वरूपी ।
न शंकर स्वरूपी न ब्रह्मा स्वरूपी ॥ सभी के०॥२॥
कठिन रूप ना जो तरल रूप ना जो ।
नहीं वाष्प को रूप तम रूप ना जो ॥
नहीं ज्योति को रूप शब्दहु नहीं जो ।
सटै कुछ भी जा पर सोऊ रूप ना जो ॥ सभी के०॥३॥
न लचकन न सिकुड़न न कम्पन है जामें ।
न संचालना नाहिं विस्तृत्व जामें ॥
है अणु नाहिं परमाणु भी नाहिं जामें ।
न रेखा न लेखा नहीं विन्दु जामें ॥ सभी के०॥४॥
नहीं स्थूल रूपी नहीं सूक्ष्म रूपी ।
न कारण स्वरूपी नहीं व्यक्त रूपी ॥
नहीं जड़ स्वरूपी न चेतन स्वरूपी ।
नहीं पिण्ड रूपी न ब्रह्माण्ड रूपी ॥ सभी के०॥५॥
है जल थल में जोइ पै जल थल है नाहीं ।
अगिन वायु में जो अगिन वायु नाहीं ॥
जो त्रयगुण गगन में न त्रयगुण अकाशा ।
जो इन्द्रिन में रहता न होता तिन्हन सा ॥ सभी के०॥६॥
मूल माया की सब ओर अरु ओत प्रोतहु ।
भरो जो अचल रूप कस सो सुजन कहु ॥
भरो मूल माया में नाहीं सो माया ।
अव्यक्त हू को जो अव्यक्त कहाया ॥ सभी के०॥७॥
ब्रह्मा महाविष्णु विश्वरूप हरि हर ।
सकल देव दानव रु नर नाग किन्नर ॥
स्थावर रु जंगम जहाँ लौं कछू है ।
है सब में जोई पर न तिनसा सोई है ॥ सभी के०॥८॥

जो मारे मरै ना जो काटे कटै ना ।
जो साड़े सड़ै ना जो जारे जरै ना ॥
जो सोखा ना जाता सोखे से कछू भी ।
नहीं टारा जाता टारे से कछू भी ॥ सभी के०॥९॥
नहीं जन्म जाको नहीं मृत्यु जाको ।
नहीं बाल यौवन जरापन है जाको ॥
जिसे नाहिं होती अवस्था हू चारो ।
नहीं कुछ कहाता जो वर्णहु में चारो ॥ सभी के०॥१०॥
कभी नाहिं आता न जाता है जोई ।
कभी नाहिं वक्ता न श्रोता है जोई ॥
कभी जो अकर्त्ता न कर्त्ता कहाता ।
बिना जिसके कुछ भी न होता बुझाता ॥ सभी के०॥११॥
कभी ना अगुण वा सगुण ही है जोई ।
नहीं सत् असत् मर्त्य अमरहु ना जोई ॥
अछादन करनहार अरु ना अछादित ।
न भोगी न योगी नहीं हित न अनहित ॥ सभी के०॥१२॥
त्रिपुटी किसी में न आवै कभी भी ।
औ सापेक्ष भाषा न पावै कभी भी ॥
ओंकार शब्दब्रह्म हू को जो पर है ।
हत अरु अनाहत सकल शब्द पर है ॥ सभी के०॥१३॥
जो टेढ़ों में रहकर भी टेढ़ा न होता ।
जो सीधों में रहकर भी सीधा न होता ॥
जो जिन्दों में रहकर न जिन्दा कहाता ।
जो मुर्दों में रहकर न मुर्दा कहाता॥ सभी के०॥१४॥
भरो व्योम से घट फिरै व्योम में जस ।
भरो सर्व तासों फिरै ताहि में तस ॥

नहीं आदि अवसान नहिं मध्य जाको।
नहीं ठौर कोऊ रखै पूर्ण वाको ॥ सभी के०॥१५॥
हैं घट मठ पटाकाश कहते बहुत-सा।
न टूटै रहै एक ही तो अकाशा॥
है तस ही अमित चर अचर हू को आतम।
कहैं बहु न टूटै न होवै सो बहु कम॥ सभी के०॥१६॥
न था काल जब था वरतमान जोई।
नहीं काल ऐसो रहेगा न ओई॥
मिटैगा अवस काल वह ना मिटैगा।
है सतगुरु जो पाया वही यह बुझेगा॥ सभी के०॥१७॥
सरव श्रेष्ठ तनधर की भी बुधि न गहती।
जो ऐसो अगम सन्तवाणी ये कहती॥
करै पूरा वर्णन तिसे 'मेँहीँ' कैसे।
है कंकड़-वणिक कहै मणि-गुण को जैसे॥ सभी के०॥१८॥

(४३)

क्षेत्र क्षर अक्षर के पार में, परमालौकिक जेह।
मेँहीँ अन्तर वृत्ति करिके, भजहु निशि दिन तेह॥१॥
युग दृष्टि की एक तीक्ष्ण नोक से, चीरि तेजस विन्दु।
सुनो अन्दर नाद ही, लखो सूर्य तारे इन्दु॥२॥
विहंग मीनी चाल चलि ज्यों, सरित सों सरित समाहिं।
त्यों नाद सों नादों में चलि, प्रभु पास भक्तन जाहिं॥३॥
संतों का मेँहीँ मार्ग यह, 'मेँहीँ' सुनो दे कान।
यहि परा भक्ति प्रसिद्ध मार्गहिं, धारु हिय धरि ध्यान॥४॥

(४४)

अरिल

सन्तमते की बात, कहूँ साधक हित लागी।
कहूँ अरिल पद जोड़ि, जानि करिहैं बड़भागी॥

बातें हैं अनमोल, मोल नहिं एक-एक की ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ', कहूँ जो चाहूँ कहन,
सन्त पद सिर निज टेकी ॥१॥
सत्‌जन सेवन करत, नित्य सत्संगति करना ।
वचन अमिय दे ध्यान, श्रवण करि चित में धरना ॥
मनन करत नहिं बोध होइ, तो पुनि समझीजै ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' समझि बोध जो होइ,
रहनि ता सम करि लीजै ॥२॥
करि सत्संग गुरु खोज करिय, चुनिये गुरु सच्चा ।
बिनु सद्‌गुरु का ज्ञान-पंथ, सब कच्चहिं कच्चा ॥
कुण्डलिया में कहूँ, सो सद्‌गुरु कर पहिचाना ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ', जौं प्रभु दया सों मिलैं,
सेविये तजि अभिमाना ॥३॥

कुण्डलिया

मुक्ती मारग जानते, साधन करते नित्त ॥
साधन करते नित्त, सत्त चित जग में रहते ।
दिन-दिन अधिक विराग, प्रेम सत्संग सों करते ॥
दृढ़ ज्ञान समुझाय बोध दे, कुबुधि को हरते ।
संशय दूर बहाय, सन्तमत स्थिर करते ॥
'मेँहीँ' ये गुण धर जोई, गुरु सोई सत्‌चित्त ।
मुक्ती मारग जानते, साधन करते नित्त ॥

अरिल

सत्य सोहाता वचन कहिय, चोरी तजि दीजै ।
तजिय नशा व्यभिचार तथा हिंसा नहिं कीजै ॥

निर्मल मन सों ध्यान करिय, गुरु मत अनुसारा।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' कहूँ सो गुरुमत ध्यान,
सुनो दे चित्त सम्हारा ।।४।।
धर गर मस्तक सीध, साधि आसन आसीना।
बैठि के चखु मुख मूनि, इष्ट मानस जप ध्याना ।।
प्रेम नेम सों करत-करत, मन शुद्ध हो।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' अब आगे को कहूँ,
सुनो दे चित्त सों ।।५।।
जहँ-जहँ मन भगि जाय, ताहि तहँ-तहँ से तत्क्षण।
फेरि फेरि ले आइ, लगाइय ध्येय में आपन ।।
ऐसहि करि प्रतिहार, धारणा धारण करिके।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' औरो आगे बढ़िय,
चढ़िय धर धारा धरिके ।।६।।
धर धर धर की धार, सार अति चेतना।
धर धर धर का खेल, जतन करि देखना ।।
धर में सुष्मन घाट, दृष्टि ठहराइ के।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' यहि घाटे चढ़ि जाव,
धराधर धाइ के ।।७।।
तजो पिण्ड चढ़ि जाव, ब्रह्माण्डहिं वीर हो।
पेलो सुष्मन दृष्टि, सिस्त ज्यों तीर हो ।।
बिन्दु नाद अगुआइ, तुमहिं ले जायेंगे।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' ज्योति मण्डल सह नाद,
की सैर दिखायेंगे ।। ८ ।।
ज्योति मण्डल की सैर, झकाझक झाँकिये।
तिल ढिग जुगनू जोति, टकाटक ताकिये ।।

होत बिज्जु उजियार, नजर थिर ना रहै।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' सुरत काँपती रहै,
ज्योति दृढ़ क्यों गहै ॥९॥
दृष्टि योग अभ्यास अतिहि, करतहि करत।
कँपनी सहजहि छुटै, प्रौढ़ होवै सुरत ॥
तिल दरवाजा टुटै, नजर के जोर से।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' लगे टकटकी खूब,
जोर बरजोर से ॥१०॥
तीनों बन्द लगाइ, देखि सुनि धरि ध्वनि धारा।
चलिय शब्द में खिंचत, बजत जो विविध प्रकारा ॥
झिंगुर की झनकार, भँवर गुञ्जार हो।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' घण्ट शङ्ख शहनाइ,
आदि ध्वनि धार हो ॥११॥
तारा सह ध्वनि धार, टेम दीपक बरे।
खुले अजब आकाश, अजब चाँदनी भरे ॥
पूर अचरजी चन्द, सहित ध्वनि कस लगे।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' जानै सोई धीर,
वीर साधन पगे ॥१२॥
साधन में पगि जाइ, अतिहि गम्भीर हो।
या तन सुधि नहिं रहे, धीर वर वीर सो ॥
साँझ भोर दिन रैन, कछू जानै नहीं।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' बाहर जड़वत् रहै,
माहिं चेतन सही ॥१३॥
जा सम्मुख या सूर्य्य, अमित अन्धार है।
ऐसो सूर्य्य महान, चन्द हद पार है ॥

होत नाद अति घोर, शोर को को कहै।
अरे हाँ रे 'मैँहीँ' महा नगाड़ा बजै,
घनहु गरजत रहै ॥१४॥
आगे शून्य समाधि, नाद ही नाद की।
लहै सन्त का दास, जाहि सुधि आदि की॥
मीठी मुरली सुनै, सुरत के कान से।
अरे हाँ रे 'मैँहीँ' बड़ा कौतुहल होइ,
ध्वनिन के ध्यान से ॥१५॥
सद्‌गुरु भेदी मिलै, सैन ध्वनि ध्यान बतावै।
अनुपम बदले नाहिं, शब्द सो सार कहावै॥
सोहू ध्वनि हो लीन, अध्वनि में जाय के।
अरे हाँ रे 'मैँहीँ' अध्वनि अशब्द अनाम,
सन्त कहैं गाय के ॥१६॥
सार शब्द ध्वनि संग, सुरत हो अकह में लीनी।
अध्वनि अशब्द अनाम, परम पद गति की भीनी॥
द्वैत द्वन्द्व सों रहित, सो प्रभु पद पाइके।
अरे हाँ रे 'मैँहीँ' सुरत न लौटइ,
बहुरि न जन्मइ आइके ॥१७॥

(४५)

मंगल

पाँच नौबत बिरतन्त कहौं सुनि लीजिये।
भेदी भक्त विचारि सुरत रत कीजिये ॥१॥
स्थूल सूक्ष्म सन्धि विन्दु पर परथम बाजई।
दुसर कारण सूक्ष्म सन्धि पर नौबत गाजई ॥२॥
जड़ प्रकृति अरु विकृति सन्धि जोइ जानिये।
महाकारण अरु कारण सन्धि सोइ मानिये ॥३॥

तिसरि नौबत यहि सन्धि पर सब छन बाजती ।
महाकारण कैवल्य की सन्धि विराजती ॥४॥
शुद्ध चेतन जड़ प्रकृति सन्धि यहि है सही ।
यहँ की धुनि को चौथि नौबत हम गुनि कही ॥५॥
निर्मल चेतन केन्द्र और ऊपर अहै ।
परा प्रकृति कर केन्द्र सोइ अस बुधि कहै ॥६॥
अत्यन्त अचरज अनुपम यहँ से बाजती ।
पंचम नौबत 'मेँहीँ' संसृति बिसरावती ॥७॥

(४६)

सृष्टि के पाँच हैं केन्द्रन सज्जन जानिये ।
सब से होते नाद हैं नौबत मानिये ॥१॥
यहि विधि नौबत पाँच बजै सब राग में ।
परखहिं हरषहिं धसहिं जो अन्तर भाग में ॥२॥
अपरा परा द्वै प्रकृति दुहुन केन्द्र दो अहैं ।
कारण सूक्ष्म स्थूल के केन्द्रन तीन हैं ॥३॥
निर्मल चेतन परा कहिय केवल सोई।
महाकारण अव्यक्त जड़ात्मक प्रकृति जोई ॥४॥
विकृति प्रथम जो रूप ताहि कारण कहैं ।
'मेँहीँ' परखि तू लेय अपन घट ही महैं ॥५॥

(४७)

उपदेश (चौपाई)

सुनिये सकल जगत के वासी ।
यह जग नश्वर सकल विनाशी ॥१॥
यह जग धूम धाम रे भाई ।
यह जग जानो छली महाई ॥२॥
सबहिं कहा यहि अगमापाई ।
तुम पकड़ा यहि जानि सहाई ॥३॥

मृग तृष्णा जल सम सुख याकी ।
तुम मृग ललचहु देखि एकाकी ॥४॥
याते भव दुख सहहु महाई ।
बिन सतगुरु कहो कौन सहाई ॥५॥
यहि सराइ महँ निज नहिं कोई ।
सुत पितु मातु नारि किन होई ॥६॥
भाई बन्धु कुटुम परिवारा ।
राजा रैयत सकल पसारा ॥७॥
सातो स्वर्गहु केर निवासी ।
दिव्य देव सब अमित विलासी ॥८॥
कोइ न स्थिर सबहिं बटोही ।
सत्य शान्ति एक स्थिर वोही ॥९॥
शान्ति स्वरूप सर्वेश्वर जानो ।
शब्दातीत कहि सन्त बखानो ॥१०॥
क्षर अक्षर के पार हैं येही ।
सगुण अगुण पर सकल सनेही ॥११॥
अलख अगम अरु नाम अनामा ।
अनिर्वाच्य सब पर सुखधामा ॥१२॥
ये सब मन पर गुण इनके ही ।
पड़े महा दुख संशय जेही ॥१३॥
यहि तुम्हरा निज प्रभु रे भाई ।
जहाँ तहाँ तव सदा सहाई ॥१४॥
इन्ह की भक्ति करो मन लाई ।
भक्ति भेद सतगुरु से पाई ॥१५॥

सतगुरु इन्ह में अन्तर नाहीं।
अस प्रतीत धरि रहु गुरु पाहीं ॥१६॥
गुरु सेवा गुरु पूजा करना।
अनट बनट कछु मन नहिं धरना ॥१७॥
अनासक्त जग में रहो भाई।
दमन करो इन्द्रिन दुखदाई ॥१८॥
काम क्रोध मद मोह को त्यागो।
तृष्णा तजि गुरु-भक्ति में लागो ॥१९॥
मन कर सकल कपट अभिमाना।
राग द्वेष अवगुण विधि नाना ॥२०॥
रस-रस तजो तबहिं कल्याणा।
धरि गुरु मत तजि मन-मत खाना ॥२१॥
पर-त्रिय झूठ नशा अरु हिंसा।
चोरी लेकर पाँच गरिंसा ॥२२॥
तजो सकल यह तुम्हरो घाती।
भव-बन्धन कर जबर संघाती ॥२३॥
दारु गाँजा भाँग अफीमा।
ताड़ी चण्डू मदक कोकीना ॥२४॥
सहित तम्बाकू नशा हैं जितने।
तजन योग्य तज डारो तितने ॥२५॥
मांस मछलिया भोजन त्यागो।
सतगुण खान पान में पागो ॥२६॥
खान पान को प्रथम सम्हारो।
तब रस-रस सब अवगुण मारो ॥२७॥
नित सतसंगति करो बनाई।
अन्तर बाहर द्वै विधि भाई ॥२८॥

धर्म कथा बाहर सत्संगा।
अन्तर सत्संग ध्यान अभंगा ।।२९।।
नैनन मूँदि ध्यान को साधन।
करो होइ दृढ़ बैठि सुखासन ।।३०।।
मानस नाम जाप गुरु केरा।
मानस रूप ध्यान उन्हि केरा ।।३१।।
यहि अवलम्ब ध्यान कछु होई।
पुनः दृष्टि बल कीजै सोई ।।३२।।
सुखमन बिन्दु को धरो दृष्टि से।
सुरत छुड़ाओ पिण्ड सृष्टि से ।।३३।।
धर कर बिन्दु सुनो अनहद ध्वनि।
विविध भाँति की होती पुनि पुनि ।।३४।।
ध्वनि सुनि चढ़ती सूरति जाई।
अन्तर पट टूटै दुखदाई ।।३५।।
छाड़ि पिण्ड तम देश महाई।
ज्योति देश ब्रह्माण्ड में जाई ।।३६।।
ध्वनि धरि याहू पार चढ़ाई।
सुरत करै अब सुनै अघाई ।।३७।।
राम नाम धुन सतधुन सारा।
सार शब्द जेहि सन्त पुकारा ।।३८।।
सो ध्वनि निर्गुण निर्मल चेतन।
सुरत गहो तजि चलो अचेतन ।।३९।।
यहु ध्वनि लीन अध्वनि में होई।
निर्गुण पद के आगे सोई ।।४०।।
मण्डल शब्द केर छुटि जाई।
अधुन अशब्द में जाइ समाई ।।४१।।

अधुन अशब्द सर्वेश्वर कहिये।
शान्ति स्वरूप याहि को लहिये ॥४२॥
अस गति होय सो सन्त कहावै।
जीवन्मुक्त सो जगहिं चेतावै ॥४३॥
सन्तमता कर भेद रे भाई।
गाइ गाइ दीन्हा समुझाई ॥४४॥
जो जानै सो करै अभ्यासा।
सत चित करि करै जग में वासा ॥४५॥
विरति पन्थ महँ बढ़े सदाई।
सत्संग सों करै प्रीति महाई ॥४६॥
तोहि बोधे दृढ़ ज्ञान बताई।
सब संशय तव देइ छोड़ाई ॥४७॥
ताको मानो गुरू सप्रीती।
सेवो ताहि संत की नीती ॥४८॥
गुरु से कपट कछू नहिं राखो।
उनके प्रेम अमिय को चाखो ॥४९॥
मीठी बोल बोलियो उनसे।
अहंकार से सब कछु बिनसे ॥५०॥
सो उनसे कभुँ करियो नाहीं।
नहिं तो रहिहौ भव ही माहीं ॥५१॥

(४८)

चैत

अधर डगर को सद्गुरु भेद बतावै ॥१॥
कज्जल केन्द्र सूई अग्र दर होई,
दृष्टि रथ चढ़ि स्त्रुति धावै ॥२॥

प्रकाश मण्डल तजि शब्द समावै,
अचल अमर घर पावै ।। ३ ।।
'मेँहीँ' दास आस सद्गुरु की,
हरदम शीश नवावै ।। ४ ।।

(४९)

आहो भाई होऊ गुरु आश्रित हो, बिना गुरु अंधकार,
सूझए न कछु सार, होऊ गुरु आश्रित हो ।।१।।
आहो भाई गुरु सेवी भेद लेहु हो, स्थूल दृश्य पिण्ड तोर,
भरा अंधकार घोर, तिल पैसी पार होउ हो ।।२।।
आहो भाई ब्रह्म जोति पार करु हो, कमल सहस दल,
जोति करे झलमल, त्रिकुटी में सूर्य्य उगे हो ।।३।।
आहो भाई जोति छाड़ी गहु शब्द हो, गहीले अनूप धुन्न,
टपु सुन्न महासुन्न, भँवर गुफाहु टपु हो ।।४।।
आहो भाई शब्द में सुरत मेली हो, ब्रह्माण्डहिं पार होउ,
सत्य में समाय रहु, भव न परउ पुनि हो ।।५।।
आहो भाई गुरु भेद गुप्त यही हो, गुरु सेवै जन जोई,
सतपथ पावै सोई, 'मेँहीँ' न दोसर लहे हो ।।६।।

(५०)

शब्द

गुरु के शरण गहु, धन धन गुरु कहु, सुखमन सुरत समाइ,
तिसर तिल हेरहु रे की ।। की आहो सन्तो हो ।। टेक ।।
बिन्दु चमकि आवै, पँच रंग ऊगि आवै,
बिजली छटक अति तेज, सहस्त्रदल पैठहु रे की ।।१।। की०।।
दीपक बरत जोत, जगमग तारे होत,
चाँदनी पूरन चन्द लखत, जी जुड़ावई रे की ।।२।। की०।।

सुरत त्रिकुटी चढ़े, सूर्य ब्रह्म देखी अड़े,
बड़ ही अजब ब्रह्मलोक, तजिये दशमा द्वारियो रे की ॥३॥ की०॥
शब्द धँसिये सूर्त, तजत अनृत नृत्य,
मिटत सकल दुख द्वन्द्व, मिलिये सतनामियो रे की ॥४॥ की०॥
भेद असल सार, परम सरल आर,
बाबा देवी साहब प्रकासिये, जीव उबारत रे की ॥५॥ की०॥
'मेँहीँ' युगल कर, जोड़ी नवत सर,
धन गुरु परम दयाल, कहल भल भेदियो रे की ॥६॥ की०॥

(५१)

मंगल

खोजो पन्थी पन्थ तेरे घट भीतरे ।
तू अरु तेरो पीव भी घट ही अन्तरे ॥१॥
तू यात्री पिव घर को चलन जो चाहहू ।
तो घटहि में राह निहारु विलम्ब न लाबहू ॥२॥
तिमिर प्रकाश वो शब्द निशब्द की कोठरी।
चारो कोठरिया अहइ अन्तर घट कोट री ॥३॥
तू उतरि पर्‌यो तम माहिं पीव निःशब्द में।
याहि ते पड़ि गयो दूर चलो निःशब्द में ॥४॥
पीव हैं सब ही ठाईं परख आवैं नहीं।
जौं निःशब्द गम होइ परख पावो सही ॥५॥
अन्ध कोठरिया माहिं सुखमना हेरहू।
तीसर तिल तहाँ पाइ के पन्थ निबेरहू ॥६॥
जोति कोठरि को द्वार केवाड़ इह खोलिके।
रमि चलु जोति के माँहिं गुरु गुन बोलिके ॥७॥
यहँ से धुन की तार पकड़ि शब्द कोठरी।
सुरत पैठि कै दाहु गुणन की मोटरी ॥८॥

निरशब्दी धुन पाइ निशब्द में गमि करो।
तहवाँ पीव को पावि सगुणागुण परिहरो।।९।।
देवि साहब की शिक्षा मंगल एह है।
इन्ह पद 'मेँहीँ' के अर्पित धन मन देह है ।।१०।।

(५२)

खोजो पंथी पंथ तेरे घट भीतरे।
तू अरु तेरो पीव भी घट ही अन्तरे ।।१।।
पिउ व्यापक सर्वत्र परख आवै नहीं।
गुरुमुख घट ही माहिं परख पावै सही ।।२।।
तू यात्री पीव घर को चलन जो चाहहू।
तो घट ही में पन्थ निहारु विलम्ब न लावहू ।।३।।
तम प्रकाश अरु शब्द निःशब्द की कोठरी।
चारो कोठरिया अहइ अन्दर घट कोट री ।।४।।
तू उतरि पर्‌यो तम माहिं पीव निःशब्द में।
यहि तें परि गयो दूर चलो निःशब्द में ।।५।।
नयन कँवल तम माँझ से पंथहिं धारिये।
सुनि धुनि जोति निहारि के पन्थ सिधारिये ।।६।।
पाँचो नौबत बजत खिंचत चढ़ि जाइये।
यहि ते भिन्न उपाय न दिल बिच लाइये ।।७।।
सन्तन कर भक्ति-भेद अन्तर पथ चालिये।
'मेँहीँ' मेँहीँ धुनि धारि सो पन्थ पधारिये ।।८।।

(५३)

योग हृदय केन्द्र बिन्दु में युग दृष्टियों को जोड़िकर।
मन मानसों को मोड़ि सब आशा निराशा छोड़िकर ।।१।।
ब्रह्म ज्योति ब्रह्म ध्वनि धार धरि आवरण सारे तोड़िकर।
सूरत चला प्रभु मिलन को विषयों से मुख को मोड़िकर ।।२।।

झूठ चोरी नशा हिंसा और जारी छोड़िकर।
गुरु-ध्यान अरु सत्संग-सेवन में स्वमति को जोड़िकर ॥३॥
जीवन बिताओ स्वावलम्बी भरम भाँड़े फोड़िकर।
सन्तों की आज्ञा हैं ये 'मँहीँ' माथ धर छल छोड़िकर ॥४॥

(५४)

निज तन में खोज सज्जन, बाहर न खोजना।
अपने ही घट में हरि हैं, अपने में खोजना ॥१॥
दोउ नैन नजर जोड़ि के, एक नोक बना के।
अन्तर में देख सुन-सुन, अन्तर में खोजना ॥२॥
तिल द्वार तक के सीधे, सुरत को खैंच ला।
अनहद धुनों को सुन-सुन, चढ़-चढ़ के खोजना ॥३॥
बजती हैं पाँच नौबतें, सुनि एक-एक को।
प्रति एक पै चढ़ि जाय के, निज नाह खोजना ॥४॥
पंचम बजै धुर घर से, जहाँ आप विराजैं।
गुरु की कृपा से 'मँहीँ', तहँ पहुँचि खोजना ॥५॥

(५५)

घट पट तिहू के पार में साईं बसै हिय अन्तरे।
जौं मिलन को चाहता चटपट से कर संग सन्त रे ॥१॥
खटपट सभी मद मान को तज ले गुरु के मन्तरे।
पूरे गुरू का मन्त यहि झटपट निरख अभिअन्तरे ॥२॥
बन्द कर पलकों को वो कर मन की छटपट अन्त रे।
मध्य सुखमन बिन्दु झलके लख ले वहँ से पन्थ रे ॥३॥
घट पट तिहू के पार जाने का असल यहि पन्थ रे॥
माया की लटपट सब छुटे यहि राह से कहैं सन्त रे ॥४॥
थिर होके चल यहि राह पर तम जोत तटपट अन्त रे।
करके धुन पट छट पिलो या टपके पावो कन्त रे ॥५॥

देवि साहब की हिदायत मान ले गुणवन्त रे।
'मेँहीँ' कहै सुख शान्ति मिलिहैं भव का होइहैं अंत रे ॥६॥

(५६)

चैत

घट बिच अजब तमाशा॥ टेक॥
अधर भूमि पर सुरत जमा के देखो अजब प्रकाशा ॥१॥
लखतहिं बने ना कहि सुनि मिले करु निज घट की तलाशा ॥२॥
घटहि में सरगुण घटही में निरगुण घट ही में सत पद वासा ॥३॥
नहिं परतीत तो गुरु हरि सेवो आपा अरपि बनो दासा ॥४॥
जाहिर जहूर सतगुरु देवि साहब भेद बतावयँ खासा ॥५॥
'मेँहीँ' कहत सुनो जो शरण गहैं लहैं निज घट के विलासा ॥६॥

(५७)

घट बीच अजब तमाशा, हे साधो, घट बीच अजब तमाशा ॥
घट की काली घटा में स्थिर, तड़ित जड़ित परकाशा, हे साधो ॥
घट में घट ता माहीँ घट है, तेहु घट में घट पासा, हे साधो ॥
सगुण जड़ क्षर घट चारि चौथ में, चेतन अगुण तन खासा, हे साधो ॥
'मेँहीँ' शब्द अनाहत सह प्रभु, घट-घट व्यापक पासा, हे साधो ॥

(५८)

प्रथमहिं धारो गुरु को ध्यान।
हो स्त्रुति निर्मल हो बिन्दु ज्ञान ॥१॥
दोउ नैना बिच सन्मुख देख।
इक बिन्दु मिलै दृष्टि दोउ रेख ॥२॥
सुखमन झलकै तिल तारा।
निरख सुरत दशमी द्वारा ॥३॥
जोति मण्डल में अचरज जोत।
शब्द मण्डल अनहद शब्द होत ॥४॥

अनहद में धुन सत लौ लाय।
भव जल तरिबो यही उपाय ।।५।।
'मेँहीँ' युक्ति सरल साँची।
लहै जो गुरु सेवा राँची ।।६।।

(५९)

सुखमन झल झल बिन्दु झलकै।
लख ले भैया बन्द पलके ।।१।।
तीसर तिल में दृष्टि धरे।
पिण्ड त्यागि ब्रह्माण्ड चले ।।२।।
खुले आकाश भरे तारा।
दीप टेम हरे अँधियारा ।।३।।
अनुपम चाँदनि जोति बरे।
तरुण सूर्य दिव जोति करे ।।४।।
अनहत अनहद धुन मीठी।
सुरत गहे करि दिव दीठी ।।५।।
धरि अस शब्द सुरत डोरी।
सुरत चलो घर सत को री ।।६।।
'मेँहीँ' भेद कहा यह सार।
गुरु सेवी पावे निरधार ।।७।।

(६०)

अधः ऊर्ध्व अरु दायें बायें, पिच्छु पाँचो त्यागि।
षष्ट बीचो बिच एक निशान, दृष्टि की लागि ।।१।।
उदित तेजस् विन्दु में, पिलि चलो चाल विहंग।
तहाँ अनहद नाद धरि, चढ़ि चलो मीनी ढंग ।।२।।

विहंग मीनी मार्ग दोउ से, चलो हे मन मीत।
मन हो उनमुन चढ़ि सुरत सुन, उठत ध्वनि उद्‌गीथ ॥३॥
स्फोटओ३म् उद्‌गीथ सत ध्वनि, प्रणव नाद अखण्ड।
सृष्टि की ध्वनि आवरण में, गुप्त गुंज प्रचण्ड ॥४॥
नाद से नादों में चलि धरु, प्रणव सत ध्वनि सार।
एक ओ३म् सतनाम ध्वनि धरि, 'मेँहीँ' हो भव पार ॥५॥

(६१)

खोज करो अन्तर उजियारी,
दृष्टिवान कोइ देखा है ॥ टेक ॥
गुरु भेदी का चरण सेव कर,
भेद भक्त पा लेता है।
निशिदिन सुरत अधर पर कर कर,
अंधकार फट जाता है ॥१॥
पीली नीली लाल सफेदी,
स्याही सन्मुख आता है।
छट-छट छट-छट बिजली छटकै,
भोर का तार दिखाता है ॥२॥
चन्दा उगत उदय हो रविहू,
धूर शब्द मिल जाता है।
गुरु सतगुरु के चरण अधीनन,
अगम भेद यह पाता है ॥३॥
विविध भाँति के कर्म जगत में,
जीवन घेरि फँसाता है।
बाबा देवि कहैं कह 'मेँहीँ',
सतगुरु गुरु ही बचाता है ॥४॥

(६२)

सुखमनियाँ में मोरी नजर लागी ॥१॥
अगल बगल कहुँ दृष्टि न डोलै,
सन्मुख बिन्दु पकड़ लागी ॥२॥
ब्रह्म जोति खुलि गई अन्तर में,
निसि अँधियारी हदस भागी ॥३॥
दिव्य जोति को सूर प्रगट भा,
सूरत सार शबद लागी ॥४॥
बाबा देवी कहैं 'मेँहीँ' सों,
ऐसहि कर निसदिन जागी ॥५॥

(६३)

सुष्मनियाँ में नजरिया थिर होइ, बिन्दु लखी तिल की ॥टेक॥
झक-झक जोती जगमग होती, चकमक-चकमक-सी ।
मोती हीरा ध्रुव-सा तारा, विद्युत हू चमकी ॥१॥
बरे जोति ध्वनि होति अनाहत, यन्त्र ताल बिन ही ।
लखत सुनत स्रुत चलत नेह भरि, नाह-राह थिरकी ॥२॥
मर्मी सज्जन सत्य भक्त सों, अन्तर मग एही ।
चलत-चलत ध्वनि सार गहे ले, मेटि जरनि जी की ॥३॥
सार शब्द ही नाह मिलावै, और नहीं कोई ।
'मेँहीँ' कही जो सन्तन भाषी, बात नहीं निज की ॥४॥

(६४)

सुखमन के झीना नाल से अमृत की धारा बहि रही ।
मीन सूरत धार धर भाठा से सीरा चढ़ि रही ॥१॥
गुरु-मंत्र जप गुरु-ध्यान कर गुरु-सेव कर अति प्रीति कर ।
गुरु की आज्ञा मान प्यारे कर सदा गुरु की कही ॥२॥

उस नाल का झीना दुआरा गुरु तुझे देंगे बता।
दोउ नैन नासा मध्य सन्मुख सूई अग्र दर ले लही ॥३॥
तम फटे जोती भरे आकाश का तू सैर कर।
शब्द अनहत सार में मिल लह ले सतपद को सही ॥४॥
दुख दर्द भव के सब मिटैं सतगुरु चरण नित सेइये।
गुरु-भक्ति बिन कछु ना बने 'मेँहीँ' सकल सन्तन कही ॥५॥

(६५)

गंग जमुन जुग धार मधहि सरस्वति बही।
फुटल मनुषवा के भाग गुरु गम नाहिं लही ॥१॥
सतगुरु सन्त कबीर नानक गुरु आदि कही।
जोइ ब्रह्माण्ड सोइ पिण्ड अन्तर कछु अहइ नहीं ॥२॥
पिंगल दहिन गंग सूर्य इंगल चन्द जमुन बाईं।
सरस्वति सुषमन बीच चेतन जलधार नाईं ॥३॥
सतगुरु को धरि ध्यान सहज स्त्रुति शुद्ध करी।
सनमुख विन्दु निहारि सरस्वति न्हाय चली ॥४॥
होति जगामगि जोति सहसदल पीलि चली।
अद्‌भुत त्रिकुटी की जोति लखत स्त्रुति सुन्न रली ॥५॥
सुन मद्धे धुन सार सुरत मिलि चलति भई।
महा सुन्य गुफा भँवर होइ सतलोक गई ॥६॥
अलख अगम्म अनाम सो सत पद सूर्त रली।
पाएउ पद निर्वाण सन्तन सब कहत अली ॥७॥
छूटेउ दुख को देश गुरु गम पाय कही।
सतगुरु देवी साहब दया 'मेँहीँ' गाइ दई ॥८॥

(६६)

गंग जमुन सरस्वती संगम पर सन्ध्या करु नित भाई ॥
दृष्टि युगल कर अंगुल द्वादश पर दृढ़ थिर धरु ठहराई।

प्राण स्पन्द बन्द होइ जाई, मनहु तजइ चंचलाई ॥
अणुहू से अणुरूप ब्रह्म संग, सहजहिं सुरति मिलाई ।
सुखदायिनी ध्वनि सहज गायत्री, हो तहँ सुनहु समाई ॥
ध्वन्यात्मक गायत्री ध्याना, जो जन करइ सदाई ।
'मेँहीँ' तासु ताप सब नासै, मुक्ति दिशा सो जाई ॥

(६७)

नोकते सफेद सन्मुख झलके झला झली ।
शहरग में नजर थिर कर तज मन की चंचली ॥१॥
सन्तों ने कही राह यही शान्ति की असली ।
शान्ति को जो चाहता तज और जो नकली ॥२॥
यह जानता कोइ राजदाँ गुरु की शरण जो ली ।
इनके सिवा न आन जो मद मान चलन ली ॥३॥
अति दीन होके जिसने सत्संग सुमति ली ।
अपने को सोई 'मँहीँ' गुरु शरण में कर ली ॥४॥

(६८)

यहि विधि जैबै भव पार मोर गुरु भेद दिए ॥टेक॥
दृष्टि युगल कर लेवै सुखमनियाँ हो,
देखबै अजब रंग रूप ॥१॥
तममा जे फुटि फुटि ऐते पँच रंगवा हो,
बिजली चमकि ऐतै तार ॥२॥
सुरति जे चढ़ि चढ़ि चन्द निहारतै हो,
लखतै सुरज ब्रह्म रूप ॥३॥
सुन्न धँसिये स्त्रुति शब्द समैतै हो,
पहूँचि मिलिये जैतै सत्त ॥४॥
सन्तन केर यह भेद छिपल छल,
बाबा कयल परचार ॥५॥

तोहर कृपा से बाबा आहो देवी साहब,
'मेँहीँ' जग फैली गेल भेद ॥६॥

(६९)

कजली

सूरति दरस करन को जाती, तकती तीसरि तिल खिरकी ॥टेक॥
जोति बिन्दु ध्रुवतार इन्दु लखि, लाल भानु झलकी ।
बजत विविध विधि अनहद शोरा, पाँच मण्डलों की ॥१॥
सन्तमते का सार भेद यह, बात कही उनकी ।
समझा 'मेँहीँ' लखा नमूना, बात है सत हित की ॥२॥

(७०)

कजली

भाई योग हृदय वृत केन्द्र बिन्दु, जो चमचम चमकै ना ॥टेक॥
नजर जोड़ि तकि धँसै ताहि में, धुनि सुनि पावै ना ।
सुरत शब्द की करै कमाई, निज घर जावै ना ॥१॥
निज घर में निज प्रभु को पावै, अति हुलसावै ना ।
'मेँहीँ' अस गुरु सन्त उक्ति, यम-त्रास मिटावै ना ॥२॥

(७१)

ऐन महल पट बन्द कै, चलु सुखमन घाटी हो ॥धुआ॥
दृष्टि डोरि स्थिर रहे, तम बिचहि में फाटी हो ।
खुले राह असमान की, टूटय भ्रम टाटी हो ॥१॥
ज्योति मण्डल धँसि धाय के, निरखत वैराटी हो ।
धुर धुन गहि लहि परम पद, बन्धन लेहु काटी हो ॥२॥
सन्तन की यह राज रही, भेख भर्म से पाटी हो ।
'मेँहीँ' देवी साहब दया, दीन्हीं भ्रम काटी हो ॥३॥

(७२)

आओ वीरो मर्द बनो अब,
जेल तुम्हें तजना होगा ।
मन-निग्रह के समर क्षेत्र में,
सन्मुख थिर डटना होगा ॥१॥
गुरु-पद धर कर ध्यान से शूरो,
दृष्टि अड़ा दो सुषमन में ।
मन की चंचलताई से,
बल कर-करके बचना होगा ॥२॥
वक्त नहीं है ऐ वीरो अब,
गाफिल होकर सोने का।
बिन्दु राह से निकल बहादुर,
तम मण्डल टपना होगा ॥३॥
दामिनि दमकै चन्दा चमकै,
सूर्य तपै जोती मण्डल ।
इस मण्डल से आगे वीरो,
और तुम्हें बढ़ना होगा ॥४॥
शब्द मण्डल में सार शब्द ध्वनि,
गुरु गम होकर धर लेना ।
जगत-जेल को इसी युक्ति से,
सुन 'मेँहीँ' तजना होगा ॥ ५ ॥

(७३)

साँझ भये गुरु सुमिरो भाई, सुरत अधर ठहराई ।
गुरु हो सुरत अधर ठहराई ॥१॥
सुषमन सुरति लगाइ के सुमिरो, मुखतें रहहु चुपाई ।
बाहर के पट बन्द करो हो, अन्तर पट खोलो भाई ॥२॥

सूर चन्द घर एके लावो, सन्मुख दृष्टि जमाई ।
ब्रह्म जोति को करो उजेरो, अन्धकार मिटि जाई ॥३॥
सूक्ष्म सुरत सुषमन होइ शब्द में, दृढ़ से धरो ठहराई ।
सार शब्द परखो विधि एही, भव बन्धन जरि जाई ॥४॥
बुद्धि परे चिन्तन से न्यारा, अगम अनाम कहाई ।
रह 'मेँहीँ' गुरु सेवा लीना, तब ही होइ रसाई ॥५॥

(७४)

कजली

मन तुम बसो तीसरो नैना महँ तहँ से चल दीजो रे ।।टेक।।
स्थूल नैन निज धार दृष्टि दोउ सन्मुख जोड़ो रे ।
जोड़ि जकड़ि सुष्मन में पैठो गगन उड़ीजो रे ॥१॥
तन संग त्यागि त्यागि उड़ि लीजो धार धरीजो रे ।
'मेँहीँ' चेतन जोति शब्द की सो पकड़ीजो रे ॥२॥

(७५)

जहाँ सूक्ष्म नाद ध्वनि आज्ञा आज्ञाचक्र करो डेरा ।
द्वार सूक्ष्म सुष्मन तिल खिड़की पील करो पारा ॥१॥
नयन कान दोउ जोड़ि छोड़ि करि मन मानस सकलो ।
टुक टिको सामने प्रेम नेम करि अधर डगर धर लो ॥२॥
जगमग जोति होति ध्वनि अनहद गैब का बज बाजा ।
ध्वनि सुनि सुनि चढ़ना सत ध्वनि धरना 'मेँहीँ' सर काजा ॥३॥

(७६)

भैरवी

योग हृदय वृत्त केन्द्र बिन्दु सुख सिन्धु की खिड़की अति न्यारी ।
स्थूल धार खिन्नहु से खिन्नहु जेहि होइ कबहुँ न हो पारी ॥१॥
मन सह चेतन धार सुरत ही केवल पैठ सकै जामें ।
जेहि हो गमनत छुटत पिण्ड ब्रह्माण्ड खण्ड सुधि हो जामें ॥२॥

अपरा परा पर क्षर अक्षर पर सगुण अगुण पर जामें हो ।
चलि पहिचानति सुरति परम प्रभु भौ दुख टरि चलि जामें हो ॥३॥
जामें पैठत सुनिय अनाहत शब्द की खिड़की याते जो ।
ब्रह्म ज्योति भी जामें झलकत ज्योति द्वार हू याते जो ॥४॥
दृष्टि जोड़ि एक नोक बना जो ताकै देखे याको सो ।
'मेँहीँ'अति मेँहीँ ले द्वारा सतगुरु कृपा पात्र हो सो ॥५॥

(७७)

संकीर्त्तन

भजो सत्तनाम, सत्तनाम, सत्तनाम ए ॥१॥
सत्तनाम के आधार, पर ही थिर है संसार ।
जानैं सन्तन विचार ॥ भजो ०॥२॥
सत्तनाम धार सार, सभी घट में पसार ।
पावै बेधै असार ॥ भजो ०॥३॥
धुन अनहत अपार, परम पुरुष को अकार ।
सत्तनाम सोई सार ॥ भजो ०॥४॥
सत्तनाम परम नाद, सभी घट में बिसमाद ।
मिलै सतगुरु परसाद ॥ भजो ०॥५॥

(७८)

सतनाम सतनाम सतनाम भज सतनाम,
भजो हो सत सतनाम, पूरन काम ॥१॥
सार शब्द सत शब्द चुम्बक धुन,
सोइ सतनाम प्रमाण, पूरन काम ॥२॥
ओत प्रोत सब घट-घट रमता,
याते राम अस नाम, पूरन काम ॥३॥
परा पश्यन्ती मध्यमा बैखरी,
ये नहिं हैं सतनाम, पूरन काम ॥४॥

ध्वन्यात्मक निःअक्षर सो है,
अआहत अनाहत नाम, पूरन काम ॥५॥
अनहद अनाहत विमल विलक्षण,
आकर्षक सो महान, पूरन काम ॥६॥
अति झीना अति मधुर अनूपम,
परम मोक्ष सुख धाम, पूरन काम ॥७॥
जो पावै पूरन प्रभु पावै,
जन्म न धारय आन, पूरन काम ॥८॥
अन्तर मुख होइ चढ़ै ब्रह्माण्ड में,
सोइ पावै सतनाम, पूरन काम ॥९॥
गुरु सेवी पावै यह 'मेँहीँ',
और न कोउ सक जान, पूरन काम ॥१०॥

(७९)

जय-जय राम, जय-जय राम, जय-जय राम, कहु जय-जय राम,
जयति जयति जय राम, हो राम राम ॥१॥
सबमें व्यापक सब तें न्यारा,
सब घट एकहि राम, हो राम राम ॥२॥
मेंहदी में लाली घीउ दूध में,
फूल में वास समान, हो राम राम ॥३॥
रूप न रस नहिं, नहिं गन्ध परसन,
नहीं शब्द नहिं नाम, हो राम राम ॥४॥
एक अनीह अरूप अनामा,
अज अव्यक्त सो राम, हो राम राम ॥५॥
मन बुद्धि इन्द्रिन को गम नाहीं,
आत्म-गम्य सो राम, हो राम राम ॥६॥

पिण्ड में गुप्त ब्रह्माण्ड में गुप्त सो,
अत्यन्त विलक्षण राम, हो राम राम ॥७॥
पिण्ड ब्रह्माण्ड परे प्रत्यक्ष सो,
सरब परे पर धाम, हो राम राम ॥८॥
गुरु भगती करि गुरु गुर लहि भजि,
'मेँहीँ' पाइये राम, हो राम राम ॥९॥

(८०)

जय जय रामा जय जय राम कहु राम ॥१॥
राम कहु राम कहु राम कहु प्यारे हो,
राम कहु राम कहु रामा ॥ जय जय० ॥२॥
त्रिकुटी परे शब्द-सरिता पार में,
प्रत्यक्ष विराजैं रामा ॥ जय जय० ॥३॥
अव्यक्त अगोचर भव पीड़ा हर,
द्वन्द्व द्वैत बिन रामा ॥ जय जय० ॥४॥
अविगत अन्त अन्त अन्तर पट,
सुरति पहुँचि लहे रामा ॥ जय जय० ॥५॥
सुरति शब्द सों चढ़िय अगम घर,
घट अन्तर पुजि रामा ॥ जय जय० ॥६॥
'मेँहीँ' दास दया सतगुरु की,
पाइय पद निरवाना ॥ जय जय० ॥७॥

(८१)

राम नाम अमर नाम भजो भाई सोई।
सोई सत धुन सब घट-घट होई ॥१॥
परा न पश्यन्ति न, मधिमा न बैखरि न,
वर्णात्मक हतधुन नहिं कोई ॥२॥
अनहत अनाहत परसावे सत पद,
पहुँचि जहाँ पुनि, भव नहिं होई ॥३॥

गुरु भेद धरि-धरि, दिव्य दृष्टि करि-करि,
तीन बन्द बन्द करि, भजो नाम सोई ॥४॥
'मेँहीँ' मेँहीँ धुनि, अन्तर अन्त सुनि,
सुरत रमे गुरु आश्रित होई ॥५॥

(८२)

सब भव भय भंजन, अघ गन गंजन,
केवल प्रभु को नाम ॥१॥
तम मोह निकन्दन, खण्डन फन्दन,
नाशन दुखमय काम ॥२॥
सत धुन अनहत, घट घट बिन हत,
सार नाम सोइ नाम ॥३॥
सो नाम निरक्षर, सब वाणिन पर,
परम मोक्ष सुखधाम ॥४॥
सो धुन सत सारा, सन्त पुकारा,
सोइ निर्मल सतनाम ॥५॥
अति मधुर सो वाणी, सन्तन जानी,
सुनि स्त्रुति लह विश्राम ॥६॥
चढ़ु होइ सुषमन, ब्रह्माण्ड महल मन,
यहीं गहो प्रभु नाम ॥७॥
धुनि अत्यन्त झीना, सत भक्त चीना,
सार यही प्रभु नाम ॥८॥
एक रस सब छन, बजत रहे धुन,
'मेँहीँ' भजो यही नाम ॥९॥

(८३)

भजो हो गुरु चरण कमल, भव भय भ्रम टारनं ॥१॥
अति कराल काल व्याल, विषम विष निवारणं ॥२॥

दीन बन्धु प्रेम सिन्धु, ज्ञान खड्ग धारणं ॥३॥
महा मोह कोह आदि, दानव संघारणं ॥४॥
सर्वेश्वर रूप गुरु, भगतन को तारणं ॥५॥
'मैँहीँ' जपो गुरु गुरु, गुरु गुरु मन मारनं ॥६॥

(८४)

भजु मन सतगुरु दयाल, काटैं जम जाला ॥१॥
प्रणतपाल अति कृपाल, प्रेम को अगाधि ताल,
हरत सकल द्वन्द्व जाल, शम दमादि शाला ॥२॥
पाँचो अघ दैत्य साल, पाँच को कराल काल,
पंच कोष दहन ज्वाल, प्रीतम हियमाला ॥३॥
टालन भव खेद जाल, जालन भ्रम भेद काल,
कालन को अति कराल, समरथ गुरु दयाला ॥४॥
'मैँहीँ' कहै हो दयाल, तुमहीं जन रच्छपाल,
सबके तुम मुकुट माल, मोको प्रतिपाला ॥५॥

(८५)

भजु मन सतगुरु दयाल, गुरु दयाल प्यारे ॥१॥
गुरु पद को बड़ प्रताप, भक्तन को हरत ताप,
अति कराल काल काँप, अस प्रभाव न्यारे ॥२॥
गुरु गुरु अति सुखद जाप, जापक जन हरत ताप,
गुरु ही सुख रूप आप, अमित गुणन धारे ॥३॥
गुरु गुरु सब जाप भूप, अनुपम सत शान्ति रूप,
उपमा में अति अनूप, दायक फल चारे ॥४॥
गुरु गुरु जप गुरु दयाल, गुरु दयाल गुरु दयाल,
निश दिन गुरु गुरु दयाल, 'मैँहीँ' उर धारे ॥५॥

(८६)

भजो हो मन गुरु उदार, भव अपार तारणं ॥१॥
ज्ञानवान अति सुजान, प्रेम पूर्ण हृदय ध्यान,

विगत मान सुख निधान, दास भाव धारणं ॥२॥
रहे जहाँ सतसंग नित्त, सुजन जन सों नेह हित्त,
शब्द तार धरे सार, प्रकृति पार उतारनं ॥३॥
छन-छन मन ध्यान रत्त, स्त्रुति रमे धुन राम सत,
प्रेम मगन जग में भ्रमण, करि करि जन तारणं ॥४॥
पलहू नहिं अनत चैन, सतसंग में दिवस रैन,
सरब जगत सुक्ख दैन, भक्तजन उधारनं ॥५॥
जग में गुरु ही आधार, 'मेँहीँ' नहिं आन सार,
गुरु बिनु सब अंधकार, सूर्य चन्द्र तारनं ॥६॥

(८७)

भजो भजो गुरु नाम हो प्यारे, भजो भजो गुरु नामा हो ॥१॥
तन धन दारा सपन है सारा, अन्त न आवै कामा हो ॥२॥
घट में तेरे घोर अन्धेरा, सोइ भरम को जामा हो ॥३॥
सतगुरु पद-नख-बिन्दु निरखि के, त्यागि चलो तम धामा हो ॥४॥
घट भीतर गुरु जोति अचरजी, निरखि गहो सतनामा हो ॥५॥
सत्य नाम धुन राम सार सो, गुरु नाम पूरण कामा हो ॥६॥
परखि सुरत सों नाम निर्मल यह, लहु 'मेँहीँ' विश्रामा हो ॥७॥

(८८)

भजु गुरु नामा, लहु विश्रामा,
बिनु गुरु भजन न चैन रे ॥
भजु गुरु नाम, भजु गुरु नाम,
भजो गुरू पद पूरन काम ॥
राम आदि अवतार, देव मुनि सन्त आर,
गुरु-पद भजते, अहमति तजते,
करते गुरु-पद ध्यान रे ॥१॥ भजु०॥
घट तम कूप में, जुग-जुग जीव भ्रमे,
ले गुरु भेद, जा तम छेद,

गुरु-पद-नख बिन्दु देख रे ॥२॥ भजु०॥
पद नख बिन्दु लख, एक टक दृष्टि रख,
सो बिन्दु तिल तारा, दशम दुआरा,
जगमग मणि गुरु जोति रे ॥३॥ भजु०॥
सहस्र कमल दल, झलमल झलमल,
पूर्ण विधु गुरु रूपा, अतिहि अनूपा,
लखि जुड़वत हिय नैन रे ॥४॥ भजु०॥
त्रिकुटी महल चढ़ दुरगम गुरु गढ़,
जहाँ ब्रह्म दिवाकर रूप गुरू धर,
करैं परम परकाश रे ॥५॥ भजु०॥
सुन्न अरु महासुन्न, भँवर गुफाहु गुन,
तहाँ सत धुन धारा, गुरु रूप सारा,
धरि स्रुति मिलु सतनाम रे ॥६॥ भजु०॥
अलख अगम सत, अनीह अनाम अकथ,
गुरु मूल सरूपा, 'मेँहीँ' अनूपा,
भजि मिलि हो भव पार रे ॥७॥ भजु०॥

(८९)

भजो साध गुरु साध गुरु साध गुरु ए ॥१॥
गुरु दाता दयाल, वह काटैं यमजाल,
पल में कर दें निहाल ॥भजो०॥२॥
गुरु कहते सत ज्ञान, सुनके मिटता अज्ञान,
सुख होता महान ॥भजो०॥३॥
गुरु ज्ञान सूर्य रूप, उनकी जोति अनूप,
उर के नासैं तम कूप ॥भजो०॥४॥
गुरु खोलैं तिल द्वार, हो ब्रह्माण्ड में पैसार,
लखिये जोती अपार ॥ भजो०॥५॥
देइ सुरत शब्द भेद, मिटा देते भव खेद,

(९०)

भजो सत्यगुरु सत्यगुरु सत्यगुरु ए ॥१॥
गुरु ज्ञान को विचार, मुख तें करते उचार,
होता संशय संहार ॥भजो०॥२॥
सभी ममता पसार, भव बंधन असार,
गुरु लेते निवार ॥भजो०॥३॥
सभी इन्द्रिन को भोग, गुरु कहते हैं रोग,
करा देते वियोग ॥भजो०॥४॥
इस तन के नौ द्वार, में पूर्ण अंधकार,
स्रुत फँसी है मँझार ॥भजो०॥५॥
गुरु भेद देवैं सार, खुलै बन्द दशम द्वार,
हो ब्रह्माण्ड में पैसार ॥भजो०॥६॥
छूटै पिण्ड अंधकार, लखो जोति चमत्कार,
यह गुरु से ही उपकार ॥भजो०॥७॥
गुरु सार शब्द भेद, देइ मिटते भव खेद,
धुन धरिये जोति छेद ॥भजो०॥८॥
करि सत धुन को ध्यान, लहैं सन्त सब अनाम,
यही निर्मल निर्वाण ॥भजो०॥९॥

(९१)

गुरु गुरु त्राहि गुरु त्राहि गुरु कहु हो ।
तन मन गुरु पद अर्पन करु हो ॥१॥
तन मन आपन दुखद महान हो ।
गुरु पद अरपि अरपि लहु ज्ञान हो ॥२॥
गुरु ज्ञान दिव्य भान हृदय उगाउ हो ।
मोह तम नाशै मोक्ष सुख पाउ हो ॥३॥
सर्व क्षण गुरु मन जौं 'मेँहीँ' रहै हो ।
निश्चय निर्वाण होय संत सब कहैं हो ॥४॥

(९२)

भजो भजो गुरुदेव हो भाई, गुरू गुरू गुरुदेव जी ॥ टेक॥
तन मन धन जन अर्पण करि-करि, करो करो गुरु सेव जी ।
विधि औ हरि हर पावत नाहीं, बिना गुरू प्रभु भेव जी ॥१॥
अति दुस्तर भव निधि के माहीं, खेवटिया गुरुदेव जी ।
भक्ति नाव में लेहिं चढ़ाई, पार करें भव खेव जी ॥२॥
सहित त्रिदेव कोटि तैंतिस सुर, करें सदा गुरु सेव जी ।
राम कृष्णादि सकल अवतारण, सेवें तजि अहमेव जी ॥३॥
देव पितर सह पूरण ब्रह्मऽरु अगम अनाम की सेव जी ।
गुरु सेवा सम कोउ न सेवा, 'मेँहीँ' कर गुरु सेव जी ॥४॥

(९३)

त्राहि गुरु त्राहि गुरु त्राहि गुरु कहु हो ।
असार संसार सए गुरु बल तरु हो ॥१॥
असार संसार मधे दुख भरपूर हो ।
गुरु कृपा बिन होय कबहुँ न दूर हो ॥२॥
गुरु कृपा होय भाई होय दुख नाश हो ।
स्थूल सूक्ष्म कारण झड़ए सब फाँस हो ॥३॥
मन में विचार 'मेँहीँ' प्रभु तेरे साथ हो ।
गुरु बिना कभुँ नाहीं पाउ सोइ नाथ हो ॥४॥

(९४)

गुरु नाम गुरु नाम गुरु नाम जय गुरु नाम,
जय जय गुरु को नाम, पूरन काम ॥१॥
गुरु नाम गुरु नाम गुरु नाम भज गुरु नाम,
भजि ले गुरु को नाम, पूरन काम ॥२॥
सत्य विचार सुरत सत शब्द में,
सतगुरु को विश्राम, पूरन काम ॥३॥

अगम ज्ञान परकाश करैं गुरु,
पाइय मूल ठेकान, पूरन काम ।।४।।
सहज सहज स्त्रुति अधर चढ़न को,
सतगुरु को फरमान, पूरन काम ।।५।।
मानस जाप ध्यान गुरु को ही,
दृष्टि जोड़ि करु ध्यान, पूरन काम ।।६।।
नयन नासिका मध सन्मुख बिन्दु,
गहु सुषमन धरि ध्यान, पूरन काम ।।७।।
दृष्टि युगल कर धरु सोई बिन्दु में,
झलकत श्वेत निशान, पूरन काम ।।८।।
वज्र कपाट खुलै तम टूटै,
ब्रह्म ज्योति झलकान, पूरन काम ।।९।।
मीन सुरत शब्द जल मिलि एकहि,
लहते अविचल धाम, पूरन काम ।।१०।।
अगम भेद दाता गुरु पूरन,
'मेँहीँ' न गुरु सम आन, पूरन काम ।।११।।

(९५)

गुरु धन्य हैं गुरु धन्य हैं गुरु धन्य दाता दयाल ।
दया करैं औगुन हरैं दें टाल भव जंजाल ।।१।।
गुरु धन्य हैं गुरु धन्य हैं गुरु धन्य दाता दयाल ।
जन्म अनेकन को अँटक खोलैं करें निहाल ।।२।।
गुरु धन्य हैं गुरु धन्य हैं गुरु धन्य दाता दयाल ।
ज्ञान ध्यान बुझाय दें स्त्रुति शब्द को सब ख्याल ।।३।।
गुरु धन्य हैं गुरु धन्य हैं गुरु धन्य दाता दयाल ।
गुरु बिन प्रभु मिलते नहीं ऐसा बड़ा मजाल ।।४।।
गुरु धन्य हैं गुरु धन्य हैं गुरु धन्य दाता दयाल ।
प्रभु गुप्त हैं गुरु प्रकट हैं हैं एक ही दयाल ।।५।।

गुरु धन्य हैं गुरु धन्य हैं गुरु धन्य दाता दयाल।
सगुण सरूपी ईश हो सबको नजर निहाल ॥६॥
गुरु धन्य हैं गुरु धन्य हैं गुरु धन्य दाता दयाल।
सब मिल कहो जपते रहो जी बने रहो खुशहाल ॥७॥
गुरु धन्य हैं गुरु धन्य हैं गुरु धन्य दाता दयाल।
हरदम रटो कभु ना हँटो तोहि छेड़ेगा न काल ॥८॥

(९६)

गुरु दीन दयाला, नजर निहाला, भक्तन पूरन काम ॥१॥
भव भय दुख नाशय, आत्म विलासय, जो रे भजै गुरु नाम ॥२॥
ममता मद हीना, अनहद लीना, बास बसैं सत धाम ॥३॥
सब सद्गुण सागर, ज्ञान उजागर, पर हित रत सब काम ॥४॥
भौ निधि कड़िहारा, संसृति पारा, भजन मगन प्रति याम ॥५॥
सत शब्द सनेही, जग में विदेही , दान करैं सत नाम ॥६॥
दे ज्ञान बताई, ध्यान बुझाई, 'मेँहीँ' भजो गुरु नाम ॥७॥

(९७)

अति पावन गुरु मंत्र मनहिं मन जाप जपो।
उपकारी गुरु रूप को मानस ध्यान थपो ॥१॥
देवी देव समस्त पूरण ब्रह्म परम प्रभू।
गुरु में करैं निवास कहत हैं संत सभू ॥२॥
प्रभहू से गुरु अधिक जगत विख्यात अहैं।
बिनु गुरु प्रभु नहिं मिलैं यदपि घट माँहि रहैं ॥३॥
उर माँहीं प्रभु गुप्त अन्धेरा छाइ रहै।
गुरु गुर करत प्रकाश प्रभु को प्रत्यक्ष लहै ॥४॥
हरदम प्रभु रहैं संग कबहुँ भव दुख न टरै।
भव दुख गुरु दें टारि सकल जय जयति करै ॥५॥
तन मन धन को अरपि गुरू-पद सेव करो।
'मेँहीँ' आज्ञा पालि दुस्तर भव सुख से तरो ॥६॥

(९८)

सतगुरू गुरुदेव गुरु, गुरु गुरु गुरु तारणं॥१॥
गुरु गुरु गुरु दिव्य जोति, जगमग हिय भक्त होति
गुरु गुरु ब्रह्म अग्नि सोति, पंच दूत जारनं ॥२॥
गुरु गुरु दस-चारि दमन, गुरु गुरु अघ धारि शमन,
गुरु गुरु सम कारि पवन, द्वैत घनहिं टारनं ॥३॥
गुरु गुरु गुरु दिव्य देव, गुरु गुरू भक्ति भेव,
गुरु गुरु गुरु परम सेव, गुरु गुरु मन मारनं ॥४॥
गुरु गुरु गुरु कल्प-विटप, गुरु गुरु गुरु 'मेँहीँ' जप
गुरु जाप जपन साँचो तप, सकल काज सारणं ॥५॥

(९९)

चौपाई

सत्य ज्ञान दायक गुरु पूरा। मैं उन चरणन को हौं धूरा ॥१॥
तन अघ मन अघ ओघ नसावन। संशय शोक सकल दुख दावन ॥२॥
गुरु गुण अमित अमित को जाना । संक्षेपहिं सब करत बखाना ॥३॥
रुज भव नाशन सतगुरु स्वामी। बार-बार पद युगल नमामी ॥४॥
मन्द मन्दता सकल निवारन। काम क्रोध मद लोभ सँघारन ॥५॥
हानि लाभ सुख दुख समकारी। हर्ष विषाद गुरू दें टारी ॥६॥
राजत सकल सिरन गुरु स्वामी। अगम बोध दाता सुखधामी ॥७॥
जनम मरन गुरु देहिं छोड़ाई। जयति जयति जय जय सुखदाई ॥८॥
कीरति अमल विमल बुधि जाकी। धनि धनि सतगुरु सीम दया की ॥९॥
जगतारण कारण सद्गति की। पथ दाता सत सरल भगति की ॥१०॥
यम नीयम सब में अति पूरन। सतगुरु महाराज की जय भन ॥११॥

(१००)

चौपाई

सतगुरु सत परमारथ रूपा ।
अतिहि दयामय दया सरूपा ॥१॥

अधम उधारन अमृत खानी ।
पर हित रत जाकी सत वाणी ॥२॥
सतगुरु ज्ञान सिन्धु अति निर्मल ।
सेवत मन इन्द्रिन हों निर्बल ॥३॥
धरम धुरन्धर सतगुरु स्वामी ।
सत्य धरम मत संत को हामी ॥४॥
सुरत शब्द मारग सुखदाई ।
सतगुरु यहि पथ देहिं बताई ॥५॥
बन्ध मोक्ष सब देहिं बताई ।
आत्म अनात्महुँ देहिं जनाई ॥६॥
विषय भोग तें लेहिं छोड़ाई ।
भव निधि बूड़त लेहिं बचाई ॥७॥
कोउ न कृपावंत सतगुरु सम ।
पद सेवा महँ मन पल-पल रम ॥८॥
दोहा– धन्य धन्य सतगुरु सुखद, महिमा कही न जाय ।
जो कछु कहुँ तुम्हरी कृपा, मोतें कछु न बसाय ॥

(१०१)

समदन

खोजत खोजत सतगुरु भेटि गेला, शहर मुरादाबाद ।टेक॥
महल्ला अताइ से ज्ञान प्रकाशलनि अमित अमित परकाश ।
घोर अंधारि में जीव दुखित छल होइ गेल सकल सनाथ ॥१॥
पूरन भेदी बाबा देवी साहब नाम विदित जग जास ।
परम दयालु बाबा तनिको परेमी पर धन धन कहै 'मेँहीँ' दास ॥२॥

(१०२)

सन्तन मत भेद प्रचार किया, गुरु साहब बाबा देवी ने ।टेक॥
थे अन्ध बने फिरते बाहिर, अन्तर-पथ भेद न थे जाहिर ।
हमें बोधि बुझाय सुझाय दिया, गुरु साहब बाबा देवी ने ॥१॥

बन्द कराय पलक पट को, कहे बाहर में तुम मत भटको।
सीधे सन्मुख सुषमन बिन्दु को, गहवाया बाबा देवी ने ॥२॥
सुषमन घर में ध्वनि धार बजै, चढ़ि श्वेत सुरत सो धार भजै।
अनहद उलझन यहि युक्ति तजै, सत ध्वनि की युक्ति दई गुरु ने ॥३॥
गुरु की यह युक्ति बड़ी मेँहीँ, 'मेँहीँ' परगट संसार नहीं।
यहि ढोल पिटाय सुनाय दिया, गुरु साहब बाबा देवी ने ॥४॥

(१०३)

जीव उद्धार का द्वार पुकार कहा,
घट भीतर ही सत संतों ने ॥ टेक ॥
संसृति संताप से काँप रहे,
भव भौंर भ्रमत जिव हाँफ रहे,
तिन्हें ढाढ़स दे समुझाय कहे,
गुरु नाम सुमर सत संतों ने ॥१॥
गुरु ध्यान धरो मन में अपने,
तिल द्वार लखो तन में अपने।
स्त्रुति जोड़ि चलो धुनि धारण में,
ये यत्न कहे सत संतों ने ॥२॥
पँच केन्द्रन पै पाँचो बजती,
अनहद नौबत जोती जरती।
कहुँ केवल ध्वनि अनुभव करती,
सूरत तन में कहे संतों ने ॥३॥
सत सन्तन की सत युक्ति यही,
यहि से भव बंधन दूर सही।
होता 'मेँहीँ' शंका न रही,
सत सत्य कहा सत संतों ने ॥४॥

(१०४)

सतगुरु सतगुरु नितहि पुकारत छीजत पाप समूह रहे ।।टेक।।
सतगुरु रूप हिये में धारत काम क्रोध मद लोभ दहे ।
अमिय रूप गहि मन सुख पावत सुरति शैल ब्रह्माण्ड लहे ।।१।।
सतगुरु चरण डोरि दृढ़ सब घट पिण्ड ब्रह्माण्ड से पार करे ।
जो पकड़े भव पार उतरि गये 'मेँहीँ' सतगुरु चरण धरे ।।२।।

(१०५)

सतगुरु चरण टहल नित करिये नर तन के फल एहि हे ।
युग-युग जग में सोवत बीते सतगुरु दिहल जगाय हे ।।१।।
आँधरि आँखि सुझत रहे नाहीं थे पड़े अन्ध अचेत हे ।
करि किरपा गुरु भेद बताए दृष्टि खुलि मिटल अचेत हे ।।२।।
भा परकाश मिटल अँधियारी सुक्ख भएल बहुतेर हे ।
गुरु किरपा की कीमत नाहीं मिटल चौरासी फेर हे ।।३।।
धन धन धन्य बाबा देवी साहब सतगुरु बन्दी छोर हे ।
तुम सम भेदि न नाहिं दयालू 'मेँहीँ' कहत कर जोरि हे ।।४।।

(१०६)

गुरु सतगुरु सम हित नहिं कोऊ निशदिन करिये सेव हे ।
तन-मन आतम रक्षक हैं गुरु गुरुहिक नाम एक लेव हे ।।१।।
मातहु तें बढ़ि छोह करैं नित पितहुँ तें अधिक भलाइ हे ।
कुल मालिकहुँ तें बढ़ि कृपा धारें गुरु सम नाहिं सहाइ हे ।।२।।
तन-मन आतम पद पर वारिये गुरु हित पटतर नाहिं हे ।
निश दिन चरण शरण में रहिये और न आन उपाइ हे ।।३।।
जौं गुरु किरपा तनिहुँ विचारैं मिटय कल्पना सोग हे ।
गुरु सम दाता साहिब नाहीं गुरु गुरु जपिये लोग हे ।।४।।
गुरु तजि और न चित्त बसाइये गुरु गुरु गुरु गुरु नित्त हे ।
जपत रहिय 'मेँहीँ' कर जोड़ी गुरु चरणन धरि चित्त हे ।।५।।

(१०७)

चलु चलु चलू भाई, धरु गुरु पद धाई,
होउ भाई दृढ़ अनुरागी, भ्रम त्यागी हो भाई ।।१।।
तन-सुख मन-सुख, इन्द्री-सुख सब दुःख,
तजि दे विषय दुखदाई, भ्रम खाई हो भाई ।।२।।
तन नव द्वार हो रामा, अति ही मलीन हो ठामा,
त्यागि चढ़ु दशम दुआरे, सुख पाउ रे भाई ।।३।।
भजु भाई गुरु गुरू, गुरु रूप ध्यान धरू,
सनमुख बिन्दु निरेखो, सुख देखो रे भाई ।।४।।
गुरु बिनु ज्ञान नाहीं, गुरु बिनु ध्यान नाहीं,
'मेँहीँ' न गुरु बिन आने, उपकारी हो भाई ।।५।।

(१०८)

गुरु को सुमिरो मीत क्यों अवसर खोवहू।
भव में बहुतक दुक्ख युगन युग रोवहू ।।१।।
चहुँ खानिन में दुर्लभ नर को देह हो।
सो तन धरि के मुक्ति जतन करि लेह हो ।।२।।
केवल नर ही तन से मुक्ति को पावहू।
याते या तन दुर्लभ मुक्ति कमावहू ।।३।।
मुक्ति कमावहु झटपट विलम्ब न लावहू।
तन क्षण-भंगुर अहइ नहीं गफिलावहू ।।४।।
पल-पल छीजत देह रहत छीजत सदा।
औचक ही गिरि जाय रहत छीजत सदा ।।५।।
गुरु को सुमिरो भाइ मुक्ति कमाइ हो।
सुमिरन विधि लेहु जानि गुरुहि रिझाइ हो ।।६।।
करि बाहर पट बन्द अन्तर पट खोलहू।
या विधि अन्तर अन्त में सुरत समोवहू ।।७।।

ऐसेहि सुरत लगाय के सुमिरन नित करो।
देवि साहब की सीख समुझि हिरदय धरो ।।८।।
'मेँहीँ' इन्ह पद दास रहे कर जोड़ि के।
गुरु दिशि लागो भाइ सकल दिशि तोड़ि के ।।९।।

(१०९)

सतगुरु सेवत गुरु को सेवत मिटत सकल दुख झेला रे ।।टेक।।
यह दुनिया दिन चारि बसेरा यहाँ न मेरा तेरा रे।
मेरा तेरा दोउ यम के हाथें पकड़ि-पकड़ि जिन घेरा रे ।।१।।
यह दुनिया बन्दी गृह यम के जिव बन्दी रहै घेरा रे।
सतगुरु गुरु बिन ना कोइ कबहूँ जो तोड़ै यम-घेरा रे ।।२।।
याते उठो सतगुरु गुरु हेरो सेव करो बहुतेरा रे।
तन मन धन आतम तिनके पद अरपि बचो यम फेरा रे ।।३।।
जागृत जिन्दा सतगुरु जग में सब जिनको कर जोड़ा रे।
बाबा सतगुरु देवी साहब जा पद को 'मेँहीँ' चेरा रे ।।४।।

(११०)

सतगुरु पद बिनु गुरु भेटत नाहीं ।।टेक।।
दृढ़ विश्वासि बनिय गुरु पद के, सेवत रहिय सदाई।
मुक्ति डगर गुरु जबहिं बतावें, सुरत चलत सुख पाई ।।१।।
अभ्यासी गुरु सेवी हंसा, मुक्ति डगर चलि जाई।
चलत चलत सतगुरु को पावत, भव दुख सकल मिटाई ।।२।।
याते छाड़ि कपट अहंकारहिं, गुरु-पद भजिय सदाई।
भव सागर दुख परम कठिन से, आन उबारक नाहीं ।।३।।
गुरु ही हितु गुरु ही पितु जाको, जाको गुरुहि सोहाई।
ते बड़ भागी पुरुष कहँ 'मेँहीँ', सहज परम गति पाई ।।४।।

(१११)

बिना गुरु की कृपा पाये, नहीं जीवन उधारा है ।।टेक।।
फँसी स्त्रुति आइ यम फाँसी, अयन सुधि आपनी नाशी,
भई भव सोग की वासी, कठिन जहँ ते उधारा है ।।१।।
गुरु निज भेद बतलावैं, सुरत को राह दरसावैं,
जीव-हित आपही आवैं, सुरत को आइ तारा है ।।२।।
गुरू हितु हैं गुरू पितु हैं, गुरू ही जीव के मितु हैं,
गुरु सम कोइ नहिं दूजा, जो जीवों को उधारा है ।।३।।
गुरू की नित्त कर पूजा, जगत इन सम नहीं दूजा,
'मेँहीँ' को आन नहिं सूझा, फकत गुरु ही अधारा है ।।४।।

(११२)

करिये भाई सतगुरू गुरू पद सेवा ।।टेक।।
विषय भोग मन ललचि-ललचि धरे, जाय पड़े यम जेवा ।
मात पिता दारा सुत बन्धू, कुटुम्ब न करे तव सेवा ।।१।।
धन को गिने निज तन न सहाई, तुम हंसा एक एका ।
याते चेति सतगुरु गुरु सेवो, करिहैं सहाइ अनेका ।।२।।
गुरु निज भेद दें अधर चढ़न को, गुरुमुख चढ़त बिसेखा ।
चढ़त-चढ़त सो टपत गगन सब, जाय मिलत सब सेखा ।।३।।
देवी साहब पूरण सतगुरु, जिन सम भेदि न दूजा ।
'मेँहीँ' निशिदिन चरण शीश धरि, आप अरपि करु पूजा ।।४।।

(११३)

आगे माई सतगुरु खोज करहु सब मिलिके,
जनम सुफल कर राह ।। टेक।।
आगे माई सतगुरु सम नहिं हित जग कोई,
मातु पिता भ्राताह ।
सकल कल्पना कष्ट निवारें,
मिटैं सकल दुख दाह ।।आगे०।।

भव सागर अन्ध कूप पड़ल जिव,
सुझइ न चेतन राह ।
बिन सतगुरु इहो गति जीव के,
जरत रहे यम धाह ।।आगे०।।
सतगुरु सत उपकारि जिवन के,
राखैं जिवन सुख चाह ।
होइ दयाल जगत में आवैं,
खोलैं चेतन सुख राह ।।आगे०।।
परगट सतगुरु जग में विराजैं,
मेटयँ जिवन दुख दाह ।
बाबा देवी साहब जग में कहावयँ,
'मेँहीँ' पर मेहर निगाह ।।आगे०।।

(११४)

चौपाई

सम दम और नियम यम दस दस ।
सतगुरु कृपा सधें सब रस-रस ।।१।।
तन-मन पीर गुरू संघारत ।
तम अज्ञान गुरू सब टारत ।।२।।
गुण त्रैफंद कटत हैं गुरु संगु ।
गुण निर्मल लह रटत गुरू मगु ।।३।।
रुचत कर्म सत धर्म-कथा अरु ।
रुकत मोह मद संग करत गुरु ।।४।।
मरत आस जग हो सुख दुख सम ।
मदद गुरू की हो अवगुण कम ।।५।।
हाजत पूरै रहै न चाहा ।
हानि न गुरु सों होवत लाहा।।६।।

राहत बखसनहार अपारा।
राग द्वेष तें करें नियारा ॥७॥
जम दुख नासैं सारैं कारज।
जय जय जय प्रभु सत्य अचारज ॥८॥
कीनर नर सुर असुर गुरू की।
कीरति भनत कहत जय गुरु की ॥९॥
जनम नसै अरु होय अमर अज।
जय जय सद्गुरु जय सद्गुरु भज ॥१०॥
यत्न सहित करु गुरु कहते सोय।
यम सम दम अरु नियम पूर्ण होय ॥११॥

(११५)

योग हृदय में वास ना, तन वास है तो क्या।
सत सरल युक्ति पास ना, और पास है तो क्या ॥१॥
सद्गुरु कृपा की आस ना, और आस है तो क्या।
करता जो नित अभ्यास ना, विश्वास है तो क्या ॥२॥
अन्तर में हो प्रकाश ना, बाहर प्रकाश क्या।
अन्तर्नाद का उपास्य ना, दीगर उपास्य क्या ॥३॥
पालन हो सदाचार ना, आचार 'मेँहीँ' क्या।
गुरु-हरि चरण में प्रीति ना, रूखा विचार क्या ॥४॥

(११६)

एकबिन्दुता दुर्बीन हो, दुर्बीन क्या करे।
पिण्ड में ब्रह्माण्ड दरस हो, बाहर में क्या फिरे ॥१॥
सुनना जो अन्तर्नाद हो, बाहर में क्या सुने।
ब्रह्मनाद की अनुभूति हो, फिर और क्या गुने ॥२॥
सुरत शब्द योग हो, और योग क्या करे।
सहज ही निज काज हो, कटु साज क्या सजै ॥३॥

सद्गुरु कृपा ही प्राप्त हो, अप्राप्त क्या रहे।
'मेँहीँ' गुरु की आस हो, भव त्रास क्या करे ॥४॥

(११७)

अन्तर के अंतिम तह में गुरु हैं, मन पता पाता नहीं।
नैनों के तिल में जोति उनकी, नजर में आता नहीं ॥१॥
अंग संग हर वक्त रहता, प्रगट हो आता नहीं।
हो रहे हैरान सागिल, जल्द दिखलाता नहीं ॥२॥
खोजते फिरते बहुत-से, इस जगत में जा-ब-जा।
अंतर के अंतिम तह के रह बिन, कोइ उसे पाता नहीं ॥३॥
बिन दया संतन की 'मेँहीँ', जानना इस राह को।
हुआ नहीं होता नहीं, वो होनहारा है नहीं ॥४॥

(११८)

सुरत सम्हारो अधर चढ़ाओ, झिलमिल जोत जगाओ री।
तारा झलके दामिनि दमके, दीपक जोति उगाओ री ॥१॥
चाँदनी चन्द सूर परेखो, आतम अनुभव पाओ री।
पाँच तीन मन न्यारा होके, सत्त शब्द मिल जाओ री ॥२॥
शांति लाभ का यत्न यही है, सब सन्तन ने गायो री।
देवी साहब प्रचार करैं यहि, 'मेँहीँ' गाइ सुनायो री ॥३॥

(११९)

कजली

घटवा घोर रे अंधारी स्त्रुति आँधरी भई ॥१॥
सुधि बुधि भागी तम गुण लागी, गुरु ने सुधी दई।
टकुआ ताकन दिये बताई, तिल खुलि तिमिर फटी ॥२॥
चमके तारा सुषमन द्वारा, सहस कमल लख री।
त्रिकुटी सूरज ब्रह्म दरस कर, सुरत शब्द रल री ॥३॥
सद्गुरु साहब प्रभु को नायब, भेद प्रचारक री।
प्रभु के निर्मल भेद प्रचारैं, 'मेँहीँ' शरण धरी ॥४॥

(१२०)

क्या सोवत गफलत के मारे, जाग जाग मन मेरे।
अन्तकाल संगी ना होगा, संग न चल कोउ तेरे ॥१॥
यह धन धाम कुटुम्ब कबीला, सब स्वारथ के चेरे।
अपने-अपने सुख के साथी, हेर न कोउ सुख तेरे ॥२॥
तन-मन सुख है ना सुख तेरो, आतम सुख निज तेरे।
तू तन-मन सुख निज कै जान्यो, भयो काल को चेरे ॥३॥
दृढ़ परतीत प्रीत करि गुरु से, कर सत्संग सबेरे।
या विधि भव फंदा कटि जैहैं, 'मेँहीँ' कहत हित हेरे ॥४॥

(१२१)

जनि लिपटो रे प्यारे जग परदेसवा सुख कछु इहवाँ नाहिं ॥टेक॥
यह परदेसवा काल को भेसवा जो रे आवयँ दुख पाहिं।
सुधि करो प्यारे हो आपन देश के जहवाँ क्लेश कछु नाहिं ॥१॥
निज कायागढ़ में ऐन महल होय आपन घर पथ पाहिं।
चलु चलु यहि पथ हाँकत दृष्टि रथ धनि सतगुरु बतलाहिं ॥२॥
जौं नहिं समझहु सतगुरु पद गहु परगट सतगुरु आहिं।
बाबा देवी साहब परगट सतगुरु 'मेँहीँ' जा पद बलि जाहिं ॥३॥

(१२२)

होली

नाहिंन करिये जगत सों प्रीती ॥टेक॥
जगत अथाह भयंकर भवनिधि, जहँ सब दुख की रीती।
जहँ सब भूल भुलावन कौतुक, समुझि पड़े नहिं नीती ॥
रहे जहँ छाई अनीती ॥१॥
छनहिं फुलावत छन मुरझावत, जगत-विटप की रीती।
और फरत फल हरष-शोक दोइ, डार-पात विपरीती ॥
जो चाहै तिसै यम जीती ॥२॥

संतन जगत भयंकर करनी, जानि सिखावय नीती ।
कहैं कृपा से सुनो हो जिवन प्रिय, यह जग भरमक भीती ॥
तजत यहि दुख जाइ जीती ॥३॥
सन्त वर्त्तमान बाबा देवी साहब, घट पट की सब रीती ।
कहै 'मेँहीँ' कह जानहु जिव सब, तजि सकिहौ भर्म भीती ॥
अरु यमहु को लैहौ जीती ॥४॥

(१२३)

समय गया फिरता नहीं, झटहिं करो निज काम ।
जो बीता सो बीतिया, अबहु गहो गुरु नाम ॥१॥
सन्तमता बिनु गति नहीं, सुनो सकल दे कान ।
जौं चाहो उद्धार को, बनो सन्त सन्तान ॥२॥
'मेँहीँ' मेँहीँ भेद यह, सन्तमता कर गाइ ।
सबको दियो सुनाइ के, अब तू रहे चुपाइ ॥३॥

(१२४)

यहि मानुष देह समैया में, करु परमेश्वर में प्यार ।
कर्म धर्म को जला खाक कर, देंगे तुमको तार ॥टेक॥
तहँ जाओ जहँ प्रकट मिलें वे, तब जानो है स्नेह ।
स्नेह बिना नहिं भक्ति होति है, कर लो साँचा नेह ॥१॥
स्थूल सूक्ष्म कारण महाकारण, कैवल्यहु के पार ।
सुष्मन तिल हो पिल तन भीतर, होंगे सबसे न्यार ॥२॥
ब्रह्मज्योति ब्रह्मध्वनि को धरि-धरि, ले चेतन आधार ।
तन में पिल पाँचो तन पारा, जा पाओ प्रभु सार ॥३॥
'मेँहीँ' मेँहीँ होय सकोगे, जाओगे वहि पार ।
पार गमन ही सार भक्ति है, लो यहि हिय में धार ॥४॥

(१२५)

दिन बीतत जावे, आयु खुटावे,
भजो भजो प्रभु नाम ॥१॥

परिजन धन सारा, सुत वित दारा,
नहिं आवै कोउ काम ॥२॥
निज तन छुटि जावे, काम न आवे,
यह जग दुख को धाम ॥३॥
सब विषय पसारा, भव की जारा,
या में नहिं आराम ॥४॥
प्रभु केवल साँचा, अरु सब काँचा,
भजो प्रभु को प्रति याम ॥५॥
अन्तर-पथ चालो, प्रभु को पा लो,
प्रभु बिनु नहिं विश्राम ॥६॥
गुरु भेद लो सारा, खोलो द्वारा,
'मेँहीँ' पहुँच प्रभु धाम ॥७॥

(१२६)

छन छन पल पल, समय सिरावे,
नर-तन दुर्लभ, फिर नहिं पावे ॥१॥
धन जन परिजन, सहित आपन तन,
सब छाड़ि जैहो काम अन्त न आवे ॥२॥
दुर्लभ मानुष तन, करिये गुरु भजन,
बिना रे भजन व्यर्थ जनम नसावे ॥३॥
गुरु गुरु जपु नाम, गुरु ध्यान धरु राम,
गुरु-पद-नख-मणि सन्मुख लखावे ॥४॥
पद-नख-विन्दु धरि, मन दृष्टि थिर करि,
नखतेन्दु भानुमय गुरु रूप पावे ॥५॥
यहि विधि ध्यान धरि, दिव्य दृष्टि करि करि,
रामनाम सार धुन गुरु परखावे ॥६॥
गुरु ही सो शब्द रूप, शान्तिप्रद औ अनूप,
'मेँहीँ' यही विधि गुरु भजि मोक्ष पावे ॥७॥

(१२७)

आहो भक्त सार भगति करु हो, असार भगति करि,
संसार भ्रमत रहि, भक्ति श्रम निष्फल हो ॥१॥
आहो भक्त छाड़ु बालक खेल हो,
बाहर भरमन, बाल खेल जैसन, अभिअन्तर धँसु हो ॥२॥
आहो भक्त सर्वेश्वर सर्वमय हो,
सब महँ भरपूर, त्रैपट कारण दूर, घट त्रैपट खोलु हो ॥३॥
आहो भक्त घट ही में लहिहौ हो, बाहर भरमिहौ,
नहिं प्रभु पइहौ, भव दुख सहिहौ हो ॥४॥
आहो भक्त द्विभुज चतुरभुज हो, अष्ट रु अनन्त भुज,
श्याम शुक्ल तेज पुंज, सब रंग शब्द धोखा हो ॥५॥
आहो भक्त प्रभु आत्म रूपी हो, स्थूल सूक्ष्म रूपी,
कारण सरूपी, सब माया कृत हो ॥६॥
आहो भक्त प्रकृति परे प्रभु हो, धँसु अन्त अन्तर,
पहुँच त्रैपट पर, तहाँ 'मेँहीँ' प्रभु लहु हो ॥७॥

(१२८)

आहो प्रेमी करु प्रेम प्रभु सए हो, बिना प्रभु दुख सहु,
भव में भ्रमत रहु, करु प्रेम प्रभु सए हो ॥१॥
आहो प्रेमी त्यागी देहु जग-प्रेम हो, जग-प्रेम फाँसी,
आत्म सुख नाशी, प्रभु-प्रेम मुक्ति-प्रद हो ॥२॥
आहो प्रेमी करिला विचार सार हो, तन-धन परिजन,
इन्द्रिय अन्तःकरण, सह सर्व स्वर्ग झूठ हो ॥३॥
आहो प्रेमी त्यागी देहु माया मोह हो, सर्व पिण्ड ब्रह्माण्ड,
अद्भुत नाटक काण्ड, प्रकृति मण्डल छय हो ॥४॥
आहो प्रेमी सत्य केवल प्रभु हो, पिण्ड-ब्रह्माण्ड पर,
प्रकृति मण्डल पर, अव्यक्त अगोचर हो ॥५॥

आहो प्रेमी आत्मगम्य प्रभु जी हो, मन तें विषय तजु,
अन्तर प्रभु को भजु, लेइ गुरु-गम 'मेँहीँ' हो ॥६॥

(१२९)

आहो ज्ञानी ज्ञान गुनी प्रभु भजु हो,
विषय पसारा, सकल असारा, दुखमय धारा हो ॥१॥
आहो ज्ञानी तन धन परिजन हो, सबही सपना,
कछु नहिं अपना, आप अपन खोजु हो ॥२॥
आहो ज्ञानी निज ततु खोजहु हो, त्रिगुण त्रितन पर,
मन बुद्धि चित पर, अहं प्रकृति पर हो ॥३॥
आहो ज्ञानी जीव ब्रह्म पर हो, निज ततु ऐसो,
कछु नहिं जैसो, निज अनुभव करु हो ॥४॥
आहो ज्ञानी तुम प्रभु एकहि हो, अद्वैत अखण्डित,
आत्म-सुख मण्डित, सब द्वैत माया हो ॥५॥
आहो ज्ञानी नहिं स्थूल, नहिं सूक्ष्म हो,
कारणहु नाहीं सबके माहीं, सबतें न्यारा हो ॥६॥
आहो ज्ञानी करु सत्संगति हो, श्रवण मनन करु,
ध्यान सुदृढ़ धरु, सब पाप परिहरु हो ॥७॥
आहो ज्ञानी सतगुरु सेवहु हो, शब्द में सुरति धरु,
तन मन जय करु, निज अनुभव लहु हो ॥८॥
आहो ज्ञानी पइहौ असहि प्रभु हो, बिनु निज अनुभव,
'मेँहीँ' भरम सब, प्रभु नहिं पइहौ हो ॥९॥

(१३०)

ध्यान-भजन-हीन, लहिहौ न प्रभु धन ।
को कहाँ भये सुभक्त पढ़ि गाइ मात्र मन ॥१॥
चित अति चंचल, विषय-रत केवल ।
सप्रेम भजन बल, होय न साधन बिन ॥२॥

भजन ध्यान साधन, करि चित आपन।
बस करि छन-छन, प्रेम दृढ़ाउ जन ॥३॥
राम नाम धुन धरि, प्रेम अति थिर करि।
भव दुख जाय टरि, अस नाम उपासन ॥४॥
ध्यान अभ्यास करि नित, होय 'मेँहीँ' निज हित।
अति ही प्रसन्न चित्त, आपन साधन गुण ॥५॥
ध्यान दर्पण गुण, अध्यानी अन्ध जाने न।
गुरु देवैं भेद अंजन, करु हेरि ही नयन ॥६॥

(१३१)

कजली

प्रभु मिलने जो पथ धरि जाते, घट में बतलाये;
सन्तन घट में बतलाये ।टेक॥
प्रेमी भक्तन धर सो मारग, चलो चलो धाये;
सन्तन घट-पथ हो धाये ॥१॥
अन्धकार अरु जोति शब्द, तीनों पट घट के से;
राह यह जावै है ऐसे ॥२॥
जोति नाद का मार्ग बना यह, धरा जाय तिल से;
लो धर यत्न करो दिल से ॥३॥
बाल नोक से मेँहीँ दर 'मेँहीँ' हो पथ पावें;
सन्त जन तामें धँसि धावें ॥४॥

(१३२)

जौं निज घट रस चाहो ।टेक॥
तो अपने को पाँच पाप से, हरदम खूब बचाहो ॥१॥
है एक झूठ नशाँ है दुसरा, तिसर नारि पर केहो ॥२॥
चौथी चोरी पंचम हिंसा, दिल से इन्हें अलगाहो ॥३॥
'मेँहीँ' सहजहिं इन्हसे बचन चहो, गुरु पद टहल कमाहो ॥४॥

(१३३)

अद्भुत अन्तर की डगरिया, जा पर चलकर प्रभु मिलते ।।टेक।।
दाता सतगुरु धन्य धन्य जो, राह लखा देते ।
चलत पन्थ सुख होत महा है, जहाँ अझर झरते ।।१।।
अमृत ध्वनि की नौबत झहरत, बड़भागी सुनते ।
सुनत लखत सुख लहत अद्भुती, 'मेँहीँ' प्रभु मिलते ।।२।।

(१३४)

नित प्रति सत्संग कर ले प्यारा, तेरा कार सरै सारा ।
सार कार्य को निर्णय करके, धर चेतन धारा ।।१।।
धर चेतन धारा, पिण्ड के पारा, दशम दुआरे का ।
जोति जगि जावै, अति सुख पावै, शब्द सहारे का ।।२।।
लख विन्दु-नाद तहँ त्रै बन्द दै के सुनो सुनो 'मेँहीँ'।
ब्रह्म-नाद का धरो सहारा आपन तन मेँहीँ ।।३।।

(१३५)

जीवो! परम पिता निज चीन्हो, कहते सन्तन हितकारी ।। टेक ।।
द्वैत प्रपंच के सागर बूड़ो, सहो दुक्ख भारी ।
तन मन इन्द्रिन संग अजाना, हो होती ख्वारी ।।१।।
गुरु गम से सुष्मन में पैठि के, अन्तर पथ धारी ।
ब्रह्म जोति ब्रह्मनाद धार धरि, हो सबसे न्यारी ।।२।।
द्वैत पार तन मन बुधि पारा, ज्ञान होय सारी ।
'मेँहीँ' सो पितु चीन्ह में आवैं, दुक्ख टरै भारी ।।३।।

(१३६)

गुरु हरि चरण में प्रीति हो, युग काल क्या करे ।
कछुवी की दृष्टि दृष्टि हो, जंजाल क्या करे ।।१।।
जग नाश का विश्वास हो, फिर आस क्या करे ।
दृढ़ भजन धन ही खास हो, फिर त्रास क्या करे ।।२।।

वैराग-युत अभ्यास हो, निराश क्या करे।
सत्संग-गढ़ में वास हो, भव पाश क्या करे ॥३॥
त्याग पंच पाप हो, फिर पाप क्या करे।
सत बरत में दृढ़ आप हो, कोइ शाप क्या करे ॥४॥
पूरे गुरू का संग हो, अनंग क्या करे।
'मँहीँ' जो अनुभव ज्ञान हो, अनुमान क्या करे ॥५॥

(१३७)

बारहमासा

मास आसिन जगत बासिन, चेत चित में लाइये।
जीवनों थोड़ो अहै क्यों, जगत में गफिलाइये ॥
ना भयो जग काहु को, कितनो कोउ अपनो कियो।
करि जतन जो याहि त्याग्यो, शांति-सुख सो ही लियो ॥१॥
कातिक काया नीच माया, मुत्र-बुन्द से है बनो।
माहिं पूरन मलन सों जो, जाय नहिं सकलो गनो ॥
ऐसो तन संग कहा गरबसि, मूढ़ अतिहि अजान रे।
नाम भजु अभिमान तजु, छनभंगु तन मस्तान रे ॥२॥
अगहन दाहन प्रकृति भोगन, गहन को जो धावहीं।
क्लेश पावहिं हारि आवहिं, कबहुँ नहिं तृपतावहीं ॥
भोगन सकल प्रत्यक्ष रोगन, जानि के हटते रहो।
गुरु टहल सत्संग-सेवन, में सदा डटते रहो ॥३॥
पूस चोरी फूस पर-त्रिय, नशा हिंसा त्यागहू।
गुरु टहल सत्संग ध्यान में, दिवस निशि अनुरागहू ॥
तरते गये जो अस किये सब, राय राणा रंक हो।
विप्र भंगी अपढ़ पढ़ुआ, करो तरिहौ न शंक हो ॥४॥
माघ भूखा बाघ कालँ के, मुख पड़ो है बाबरे।
होश कर चेतो सबेरे, बचो ध्यान के दाव रे ॥

काल मुख से निबुकि भागो, ध्यान के बल भाइ रे।
ऐसो औसर खोइहौ तो, रोइहौ पछिताइ रे ।।५।।
मास फागुन मस्त होइ के, कियो बहुत बनाव हो।
ऊँच महलन जटित मणिगण, सुख तबहुँ नहिं पाव हो ।।
कूल भल अरु रूप भल, अरु त्रिया भल पायो सही।
सुख तबहुँ नाहीं मिले, बिन ध्यान के स्वपनहुँ कहीं ।।६।।
चैत सुख की चिन्त करहु, तो विविध कर्महिं त्यागहू।
ध्यान में लवलीन रहिकै, गुरु चरण अनुरागहू ।।
विविध नेम अचार जप-तप, तिरथ व्रत मख दानहू।
कबहुँ सरवर ना करै जो, ध्यान बन पलहू कहू ।।७।।
वैशाख सकलो साख ग्रन्थन, की रहै जानत कोऊ।
ध्यान बिन मन अथिर जौं, तो शांति नहिं पावै सोऊ ।।
फिरै चहुँ दिशि जगत में, अरु वक्तृता देता फिरै।
ध्यान बिनु नहिं शान्ति आवै, लोगहू कितनहु घिरै ।।८।।
जेठ उतरी हेठ सूरत, पिण्ड में वासा करी।
भूलि गइ घर आदि अपना, भव में सब सुधि गइ हरी ।।
सुरत चेत अचेत छोड़ो, तू शिखर की वासिनी।
माया में मगनो नहीं, यह अहै दारुण फाँसिनी ।।९।।
आषाढ़ तम अति गाढ़ में, नीचो पड़ी री सूरती।
उद्धार कर निज गुरु दया, ले हेर प्रभु बिन्द मूरती ।।
दोउ नयन बीचो बीच सन्मुख, एकटक देखत रहो।
आपही वह विन्दु झलके, पट गिरा निरखत रहो ।।१०।।
सावन शिखर सोहावनो पर, धीरे-धीरे चढ़ि चलो।
तारा चन्दा सूर पूरा, नूर तजि शब्दहिं रलो ।।
घट-घट में होता आपही, यह शब्द अगम अपार है।
प्रभु नाम निर्मल राम यह, शब्द सार सकल अधार है ।।११।।
भादो भव दुख यों तजो, प्रभु नाम अवलम्बन करी।
पर नाम सो बिनु ध्यान कोउ न, परखि कै थम्भन करी ।।

देवी साहब कहैं 'मेँहीँ', सुनो चित्त लगाइ के।
गुरु भक्ति बिनु नाहीं सफलता, सन्त कहैं सब गाइ के ॥१२॥

(१३८)

चौमासा

जेठ मन को हेठ करिये, मान मद बिसराइये।
गुरु सद्गुरु पद सेव करि-करि, कठिन भव तरि जाइये ॥
आषाढ़ गाढ़ अन्धार घट में, जातें दुख अपार है।
गुरु कृपा तें भेद लहि तम, तोड़ि दुख निवारिये ॥
सावन सुखमन दृष्टि आनत, दामिनि छिन-छिन दमकई।
हील डोल तजि सुरत थिर करि, प्रणव तार उगाइये ॥
भादो भव दुख छोड़ि चलिये, जोति छेदि पड़ाइये।
सारशब्द में लीन होइ कर, 'मेँहीँ' गुरु-गुण गाइये ॥

(१३९)

आरति तन मन्दिर में कीजै।
दृष्टि युगल कर सन्मुख दीजै ॥१॥
चमके विन्दु सूक्ष्म अति उज्ज्वल।
ब्रह्मजोति अनुपम लख लीजै ॥२॥
जगमग जगमग रूप ब्रह्मण्डा।
निरखि निरखि जोती तज दीजै ॥३॥
शब्द सुरत अभ्यास सरलतर।
करि-करि सार शबद गहि लीजै ॥४॥
ऐसी जुगति काया गढ़ त्यागि।
भव-भ्रम-भेद सकल मल छीजै ॥५॥
भव-खण्डन आरति यह निर्मल।
करि 'मेँहीँ' अमृत रस पीजै ॥६॥

(१४०)

आरति परम पुरुष की कीजै ।
निर्मल थिर चित आसन दीजै ।।१।।
तन मन्दिर महँ हृदय सिंहासन ।
श्वेत बिन्दु मोती जड़ दीजै ।।२।।
अविरल अटल प्रीति को भोगा ।
विरह पात्र भरि आगे कीजै ।।३।।
जत सत संयम फूलन हारा ।
अरपि अरपि प्रभु को अपनीजै ।।४।।
धूप अकाम अरु ब्रह्म हुताशन ।
तोष धूपची धरि फेरीजै ।।५।।
तारे चन्द्र सूर दीपावलि ।
अधर थार भरि आरति कीजै ।।६।।
आतम अनुभव जोति कपूरा ।
मध्य आरती थाल सजीजै ।।७।।
अनहद परम गहागह बाजा ।
सार शब्द धुन सुरत मिलीजै ।।८।।
द्वन्द्व द्वैत भ्रम भेद विडारन ।
सतगुरु सेइ अस आरति कीजै ।।९।।
'मेँहीँ' मेँहीँ आरति येही ।
करि-करि तन मन धन अरपीजै ।।१०।।

(१४१)

आरति अगम अपार पुरुष की ।
मल निर्मल पर पर दुख सुख की ।।१।।
शीत उष्णादि द्वन्द्व पर प्रभु की ।
अविनाशी अविगत अज विभु की ।।२।।

मन बुधि चित पर पर अहंकार की।
सर्वव्यापी और सबतें न्यार की ॥३॥
रूप गन्ध रस परस तें न्यार की।
सगुण अगुण पर पार असार की ॥४॥
त्रैगुण दश इन्द्रिन तें पार की।
अमृत ततु प्रभु परम उदार की ॥५॥
पुरुष प्रकृति पर परम दयाल की।
ब्रह्म पर पार महाहु काल की ॥६॥
अति अचरज अनुपम ततु सार की।
अति अगाध वरणन तें न्यार की ॥७॥
अकह अनाम अकाम सुपति की।
जन त्राता दाता सद्गति की ॥८॥
अखिल विश्व मण्डप करि उर की।
पूर्ण भरे ता महँ प्रभु धुर की ॥९॥
दिव्य जोति आतम अनुभव की।
दिव्य थाल अभ्यास भजन की ॥१०॥
असि आरति 'मेँहीँ' सन्तन की।
करि तरि हरिय दुसह दुख तन की ॥११॥

(१४२)

अज अद्वैत पूरण ब्रह्म पर की।
आरति कीजै आरत हर की ॥१॥
अखिल विश्व भरपुर अरु न्यारो।
कछु नहिं रंग न रेख अकारो ॥२॥
घट घट बिन्दु बिन्दु प्रति पूरन।
अति असीम नजदीक न दूर न ॥३॥
वाष्पिय तरल कठिनहू नाहीं।
चिन्मय पर अचरज सब ठाहीं ॥४॥

अति अलोल अलौकिक एक सम।
नहिं विशेष नहिं होवत कछु कम ॥५॥
नहिं शब्द तेज नहीं अँधियारा।
स्वसंवेद्य अक्षर क्षर न्यारा ॥६॥
व्यक्त अव्यक्त कछु कहि नहिं जाई।
बुधि अरु तर्क न पहुँचि सकाई ॥७॥
अगम अगाधि महिमा अवगाहा।
कहन में नाहीं कहिये काहा ॥८॥
करै न कछु कछु होय न ता बिन।
सबकी सत्ता कहै अनुभव जिन ॥९॥
घट-घट सो प्रभु प्रेम सरूपा।
सबको प्रीतम सबको दीपा ॥१०॥
सोइ अमृत ततु अछय अकारा।
घट कपाट खोलि पाइये प्यारा ॥११॥
दृष्टि की कुंजी सुष्मन द्वारा।
तम कपाट तीसर तिल तारा ॥१२॥
खोलिये चमकि उठे ध्रुव तारा।
गगन थाल भरपूर उजेरा ॥१३॥
दामिनि मोती झालरि लागी।
सजै थाल विरही वैरागी ॥१४॥
स्याही सुरख सफेदी रंगा।
जरद जंगाली को करि संगा ॥१५॥
ये रंग शोभा थाल बढ़ावैं।
सतगुरु सेइ-सेइ भक्तन पावैं ॥१६॥
अचरज दीप-शिखा की जोती।
जगमग-जगमग थाल में होती ॥१७॥

असंख्य अलौकिक नखतहु तामें।
चन्द औ सूर्य अलौकिक वामें ॥१८॥
अस ले थाल बजाइये अनहद।
अचरज सार शब्द हो हदहद ॥१९॥
शम दम धूप करै अति सौरभ।
पुष्प माल हो यम नीयम सभ ॥२०॥
अविरल भक्ति की प्रीति प्रसादा।
भोग लगाइय अति मर्यादा ॥२१॥
प्रभु की आरति या विधि कीजै।
स्वसंवेद्य आतम पद लीजै ॥२२॥
अकह लोक आतम पद सोई।
पहुँचि बहुरि आगमन न होई ॥२३॥
सन्तन कीन्हीं आरति एही।
करै न परै बहुरि भव 'मेँहीँ' ॥२४॥

(१४३)

प्रेम प्रीति चित चौक लगाये। आसन प्रेम सुभग धरवाये ॥
प्रेम डगर गुरु आनि बिठाये। प्रेम प्रेम जल पात्र मँगाये ॥
प्रेम भाव कर चरण पखारे। चरणामृत ले सुरत सुधाये ॥
पूरन भाग जगे अब आये। प्रेम थाल गुरु सन्मुख लाये ॥
जा में प्रेम थाल भर पूरे। रुचि रुचि साहब भोग लगाये ॥
प्रेम पान दे आरति उतारे। गुरु को प्रेम पलंग पौढ़ाये ॥
बाबा सतगुरु देवी साहब। 'मेँहीँ' जपत प्रेम मन लाये ॥

(१४४)

गुरु जुगती लय घट पट टारौं।
अन्तर अन्त धँसि तन मन वारौं ॥१॥

हृदय गगन को थाल बनावौं ।
ब्रह्म जोति आरती सजावौं ॥२॥
आत्म समर्पि नैवेद्य चढ़ावौं ।
सार शब्द धुनि मंगल गावौं ॥३॥
अनहद घंटा शंख बजावौं ।
यहि आरति करि प्रभु अपनावौं ॥४॥
प्रभु को पाइ अपनपौ हारौं ।
द्वैत भाव 'मेँहीँ' तज डारौं ॥५॥

॥ समाप्त ॥

नित्य प्रार्थना के अंत में गायी जानेवाली तुलसी साहब कृत आरती

आरति संग सतगुरु के कीजै । अन्तर जोत होत लख लीजै ॥१॥
पाँच तत्त्व तन अग्नि जराई । दीपक चास प्रकाश करीजै ॥२॥
गगन-थाल रवि-शशि फल-फूला । मूल कपूर कलश धर दीजै ॥३॥
अच्छत नभ तारे मुक्ताहल । पोहप-माल हिय हार गुहीजै ॥४॥
सेत पान मिष्टान्न मिठाई । चन्दन धूप दीप सब चीजैं ॥५॥
झलक झाँझ मन मीन मँजीरा । मधुर मधुर धुनि मृदंग सुनीजै ॥६॥
सर्व सुगन्ध उड़ि चली अकाशा । मधुकर कमल केलि धुनि धीजै ॥७॥
निर्मल जोत जरत घट माँहीं । देखत दृष्टि दोष सब छीजै ॥८॥
अधर धार अमृत बहि आवै। सतमत-द्वार अमर रस भीजै ॥९॥
पी-पी होय सुरत मतवाली। चढ़ि-चढ़ि उमगि अमीरस रीझै ॥१०॥
कोट भान छवि तेज उजाली । अलख पार लखि लाग लगीजै ॥११॥
छिन-छिन सुरत अधर पर राखै । गुरु-परसाद अगम रस पीजै ॥१२॥
दमकत कड़क-कड़क गुरु-धामा । उलटि अलल 'तुलसी' तन तीजै ॥१३॥

❑❑❑❑